UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186106
UNIVERSAL
LIBRARY

श्रीराम

गोद

श्रीसियारामशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

षष्ठावृत्ति

२००२ वि०

मूल्य

१।)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा

साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

पूज्यपाद अग्रज

"नन्ना"

—श्रीरामकिशोर गुप्त—

के

कर-कमलों में

श्री:

विश्वास

भैया को चौसर खेलने का बहुत शोक है। जम जाते हैं तो सात सात आठ आठ घंटे अक्लान्त भाव से खेलते रहते हैं। किसी श्रेष्ठ औपन्यासिक का उपन्यास भी कदाचित् किसीको इतनी देर पकड़ कर बैठा नहीं सकता। यह खेल भी जीती-जागती कहानियों का आकर ही जान पड़ता है। सभी बाजियों का कथानक एक, परन्तु आनन्द प्रति बार नया। प्रत्येक बाजी की कहानी ऐसी, जो सुखान्त भी हो सकती है और दुःखान्त भी; परन्तु अन्तिम अध्याय के अन्तिम पृष्ठ तक अनुभवी से अनुभवी खिलाड़ी को भी परिणाम का निश्चित पता नहीं लगने पाता। उसमें कहानी का चढ़ाव, चरम-परिणति और उतार आदि सब कुछ देखने को मिल जाता है। चार रंग की गोटें, सब एक दूसरे को धोखा देकर, अनेक आघात-प्रतिघातों के बीच पिटती और बचती हुई एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहती हैं। इस द्वन्द्व और अनिश्चितता के बीच जो आनन्द मिलता है, वह अच्छी से अच्छी कहानी में ही मिल सकना सम्भव है।

भैया को खेलते देख मुझे भी यह खेल खेलने की आकांक्षा हो उठती है। अनाड़ी को पाँसा अच्छा आता है, यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु आफत की बात है कि खेलने वाले को मुनीम भी होना चाहिए! पौ बारह पड़े नहीं और गोट उठाकर यथास्थान रख दो; गिनकर हिसाब लगाने के लिए

यहाँ कोई समय नहीं है। यह झंझट मुझे नहीं आती। इसलिए पाँसा मैं फेंकता जाता हूँ और भैया चाल बताते जाते हैं,—यह गोट यहाँ रक्खो और वह वहाँ। मेरे जैसे अनाड़ियों का खेलना निरापद भी इसी तरह हो सकता है। जीत हो तो उसका आनन्द अपना और हार हो तो उसकी लज्जा या संकोच का भार दूसरे के ऊपर।

मेरा साहित्यिक जीवन भी इसी तरह का एक खेल है। स्वयं खेलने की अपेक्षा खेल देखना ही मुझे अधिक रुचिकर जान पड़ता है, फिर भी कभी कभी खेलने के लिए स्वयं बैठ जाता हूँ। खिलाने वाले के विश्वास के बल पर कभी कभी मैं ऐसी जगह चल देता हूँ कि यदि मुझमें समझ होती तो ऐसा करने में मुझे थोड़ा-बहुत संकोच तो अवश्य होता।

परन्तु मुझे कोई संकोच नहीं है। साहित्यक-जगत् के इस अपरिचित और अज्ञात पथ पर चलते हुए भी मुझे कोई संकोच नहीं है। जहाँ किसी तरह भटक जाने की आशंका होगी, वहीं खिलाने वाले का पुण्य-संकेत मुझे उचित मार्ग दिखाकर मेरी सारी कठिनाई दूर कर देगा। इस दृढ़ विश्वास के होते हुए भी यदि मैं अपने लक्ष्य पर न पहुँच सकूँ तो चित्त में मुझे कोई ग्लानि न होगी। इसलिए आज के दिन का यह उत्सव मैं विना किसी संकोच के, सानन्द सम्पन्न कर रहा हूँ।

चिरगाँव
फाल्गुन पूर्णिमा १९८९ } सियारामशरण
१९३२

श्रीराम

गोद

(१)

सबेरे की धूप का सेवन करके शोभाराम नहाने की तैयारी में था। इतने में द्वार पर एकाएक एक गाड़ी आ खड़ी हुई। पार्वती के गाड़ी से उतरने के पहिले ही शोभाराम दौड़ कर वहाँ जा पहुँचा। झट से पैर छूते हुए उसने उन्हें सहारा देकर नीचे उतारा। आनन्द और आश्चर्य से विह्वल होकर बोला—अरे भौजी, समाचार दिये विना ही कैसे आ गईं? तुम तो काशी और अयोध्या जा रहीं थीं।—बंसा दिन भर न जानें कहाँ रहता है; ओ भगोला, आकर सब सामान झट से उतार तो।

पार्वती ने कपड़े से मुहँ बँधा हुआ मिट्टी का एक भाण्ड स्वयं उठा लिया। उसके हाथ से उसे लेकर शोभाराम ने कहा—इसमें तो बड़ा माल-टाल मालूम होता है। घबराओ मत, भगोला इसे न छुएगा। तीर्थ का सब प्रसाद तो मेरे हाथ में ही आ गया! अब इसे कोई नहीं पा सकता। और हाँ, मझले कहाँ रह गये भौजी?

कुम्भ के अवसर पर भौजी के साथ शोभाराम भी प्रयाग जा रहा था, परन्तु ठीक समय पर एकाएक सरदी लग जाने के कारण वह न जा सका था और पर्व-फल लेने लिए उत्सुक पार्वती अपने भाई की संरक्षकता में चली गई थी। उन्हींके सम्बन्ध में पूछे जाने पर कुछ संकोच के साथ उसने कहा—चौराहे तक मुझे अच्छी तरह गाड़ी पर पहुँचा कर वे सीधे गाँव पर चले गये हैं।

शोभाराम की सारी प्रसन्नता एक क्षण में ही तिरोहित हो गई। क्षुब्ध होकर उसने कहा—सीधे गाँव पर चले गये हैं,—यहाँ तक दो डग और चले आते तो क्या हम लोग उन्हें यहीं पकड़कर बाँध रखते? यहाँ तक भी उनके आने की क्या आवश्यकता थी? प्रयाग से सीधा टिकट कटाकर तुम्हें गाड़ी में बिठा देते, तब भी तो तुम रास्ते में कहीं खो न जातीं। यदि मैं ऐसा जानता तो चाहे कुछ क्यों न होता, मैं तुम्हें इस तरह किसी दूसरे के साथ कभी न जाने देता।

मीठी भर्त्सना के साथ पार्वती ने उत्तर दिया—कैसी बात करते हो लल्ला! भैया के साथ कहीं जाना क्या किसी दूसरे के साथ जाना है? वे तो यहाँ तक पहुँचाने के लिए आ रहे थे। मैंने ही उन्हें घर जाने के लिए कहा, तब कहीं रुके। तीर्थ से लौटकर सीधे घर जाने की ही विधि है। इसमें किसीको बुरा नहीं मानना चाहिए।

भौजी का अपने भैया के साथ भी जाना शोभाराम को

रुचिकर नहीं जान पड़ा था। उनके स्नेह में से, भाई हो या बहन, किसी दूसरे का हिस्सा-बाँट उसे अनधिकार-सा प्रतीत होता था। इसलिए जब उसे यह मालूम हुआ कि उसकी भौजी उसीके अपने घर की अधिष्ठात्री है, उस पर अपने पित्रालय का अधिकार भी नगण्य है, तब उसके जी का समस्त विकार दूर हो गया। हँसकर बोला—धन्य है भौजी,—तुम्हारा तीर्थ-फल; और दो डग इधर चले आने में उसके खुर घिस जाते! यदि काशी और अयोध्या और हो आतीं तब तो कदाचित् उसका यहाँ तक आना भी न हो सकता। हाँ, तुम बीच में से ही क्यों लौट आईं?

"प्रयाग में आजकल ऐसी भीड़ थी कि फिर और कहीं जाने की हिम्मत किसीको नहीं पड़ी। सबकी यही सलाह हुई कि अब सीधे घर ही चलना चाहिए।"

"तुम्हें ज्वर भी तो आगया था?"

"वह कुछ ऐसा नहीं। बस एक रोज रात के समय कुछ अधिक हो गया था।"

"वह कुछ नहीं था, यह तो चेहरे से ही मालूम होता है। भौजी तुम तीर्थ करने गई थीं तीर्थ; कुछ हँसी-खेल न था। ज्वर आये बिना तुम्हारी तपस्या पूरी न हो सकती। परन्तु अब तो तबीयत ठीक है?"

पार्वती ने धीमे कण्ठ से उत्तर दिया—बुरी तो नहीं जान पड़ती। तुम्हें साथ ले चलती तो बहुत अच्छा रहता।

शोभाराम साथ न चलने का झूठ-मूठ का उलहना उन्हें देने ही वाला था, परन्तु जब उन्होंने बिना किया वह दोष स्वेच्छा से स्वयं अपने सिर ले लिया और उसने उन्हें इस प्रकार दुःखी देखा, तब उसका मन पीड़ित हो उठा। बोला—तुम क्या करती भौजी, दादा ने ही मुझे नहीं जाने दिया था। वे तो मेरी मामूली सरदी से ही इतने घबरा गये थे कि राम, अब न जानें क्या होने वाला है। अब खड़ी क्यों हो, जरा आराम से बैठो। इधर-उधर क्या देख रही हो? दादा गाँव पर गये हैं। तुम पहले से सम्मन भेज देतीं तो ठीक रहता।

इसी बीच में मुहल्ले की स्त्रियाँ और लड़के-बच्चे पास झिमिट आये थे। सब एक साथ खिलखिला कर हँस पड़े। प्रौढ़ा पार्वती के मुहँ पर भी कुछ लालिमा दौड़ गई।

(२)

तीसरे पहर खा-पीकर धूप में बैठी बैठी पार्वती सुपारी कतर रही थी। शोभाराम ने तेजी से आकर कहा—भौजी, तुम हमें छोड़कर तीर्थ कर आई। चट-से मेरे लिए एक दुहरा पान तो लगा दो, नहीं तो मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

पार्वती ने हँसकर कहा—ऐसे छोटे अपराध के लिए इतनी बड़ी सजा!

शोभाराम ने गम्भीर होने की चेष्टा करते हुए कहा—यह तो कुछ भी नहीं है। जब तक तुम बाहर रहीं, हमने तुमसे अनबोल रक्खा; तुम्हारे हाथ की रसोई नहीं छुई। अब आज एक पान में ही सब झगड़ा निबटता है।

पार्वती हँसने का प्रयत्न करते हुए बोली—बड़ी बात, झगड़ा निबट गया।

शोभाराम मुहँ में पान देते हुए पार्वती के पास बैठ गया। बोला—अभी क्या हुआ, मुकद्दमे की मिसिल फिर से देखनी पड़ेगी। तब ठीक तौर से मालूम हो सकेगा कि झगड़ा निबट गया या अभी कुछ कसर है। हाँ, तुम पर्व पर लड़का

लेने गई थीं, उसका हाल तो तुमने कुछ कहा ही नहीं। भैया कहाँ है, उसे हमें दिखा तो दो भौजी।

शोभाराम की अवस्था यद्यपि लड़कपन को पार कर चुकी थी, फिर भी, हेमन्त का प्रातःकाल जिस तरह जाते-जाते भी अधिक काल तक टिका-सा रहता है वैसे ही उसका बचपन उसके भीतर से अभी तक गया नहीं था। वह अभी तक यह नहीं जानता था कि लड़के-बच्चे के लिए भी किसीको परेशान होना चाहिए। बल्कि अब तक उसके अनुभव ने उसे यही बताया था कि लड़कों-बच्चों के होने से ही परेशानी बढ़ती है। उन्हें कुछ भी शऊर नहीं होता, चाहे जहाँ जगह गन्दी कर देते हैं; रात-दिन चेंचें-मेंमें करके नाकों दम किया करते हैं और जब तबियत हुई झट से बीमार पड़ जाते हैं! इसीसे वह भौजी के जप-तप, पूजा-पाठ और ब्रह्म-भोज आदि की हँसी उड़ाता रहता था। परन्तु आज जब उसने अपने परिहास से भौजी की आँखें सजल देखीं, तब उसे मानों चेत हुआ। इस परिहास को पहले की तरह उन्होंने हलकी-सी हँसी और लज्जा से टाल नहीं दिया, यह उसकी दृष्टि से छिपा न रह सका। एक क्षण में ही मानों उसने उनके सर्वाङ्ग में मिश्रित निराशा-पूर्ण विषाद-लेख को पढ़ लिया। अनजान में उसने उनके हृदय के किस सुकोमल मर्मस्थल पर आघात कर दिया है, एकाएक यह उसकी समझ में न आ सका। अवश्य ही किसी ठग-साधु ने उनसे कोई ऐसी बात कह दी है कि

जिसने उनकी अस्पष्ट आशा का भी दीपक बुझा दिया है। पार्वती ने कुछ कहा नहीं, सिर नीचा किये जहाँ की तहाँ बैठी रही। शोभाराम आगे खिसककर छोटे बच्चे की तरह उनकी गोद में लेट गया। बोला—जी छोटा क्यों करती हो भौजी? मैं तो हूँ तुम्हारा लड़का। मुझे अपनी किसी माँ की याद नहीं है, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि भगवान् ने तुम्हें ही मेरी माँ बनाया है। वंसा अपने बाप को भैया कहता है, मैं अपनी माँ को भौजी; बस इतना ही अन्तर है और कुछ नहीं।

पार्वती की आँखों में आनन्द के आँसू छलक पड़े। शोभाराम की पलकें भी भींग गईं। भौजी न तो पीछे हटी, न उन्होंने उसे गोद से ही हटाया। एक क्षण के भीतर ही आह्लाद की उज्वल रेखा के रूप में मानों मातृ-दुग्ध ही उसके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो उठा! इतने बड़े देवर को गोद में लिटाने में भी कोई संकोच हो सकता है, उस समय इस बात के विचार के लिए उसके हृदय में स्थान ही न रहा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों विधाता ने एक इसी क्षण के लिए ही उसके समस्त जीवन की रचना की है! कुछ देर बाद अपने को सँभाल कर उसने कहा—लल्ला, तुम प्रसन्न बने रहो, अब मुझे किसी लड़के की आकांक्षा नहीं है।

शोभाराम उठकर वहीं बैठ गया। आज उसे भी जिस आनन्द की अनुभूति हुई, उसके लिए वह बिलकुल नया था।

पार्वती फिर कहने लगी—बस आगे की लग्न में विवाह

हो जाय, कोई झगड़ा-झंझट न उठ खड़ा हो, तो फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

घर में बड़ों के बीच विवाहित होकर स्वयं बड़े हो जाने की कल्पना शोभाराम को कुछ अच्छी नहीं जान पड़ती थी; इसलिए उसे अपने विवाह की चर्चा में लज्जा का अनुभव होता था। उसने बात बदलनी चाही; परन्तु झगड़ा-झंझट की नई आशंका से उन्मुख-सा होकर जैसा का तैसा बैठा रहा।

पार्वती कहती गई—इसमें उस बेचारी का क्या दोष, वह तो अभी अनजान लड़की है। बड़े बड़े आदमी तक वैसी भीड़ में हिरा जाते हैं। वह तो बड़ी कुशल हुई। भगवान् उन सेवा-समिति वालों का भला करे, जिन्होंने भटका हुआ जानकर उसे दो दिन तक अपने डेरे में अच्छी तरह रक्खा और पीछे से उसके स्थान का पता लगाकर उसे वहाँ अच्छी तरह पहुँचा दिया।

शोभाराम ने मुक्ति की साँस ली। उसकी वाग्दत्ता पत्नी खोकर अच्छी तरह मिल गई, भौजी फिर भी उसके लिए शंकित हो रही हैं कि इस देहात में वहाँ की तरह कहीं वह फिर खो न जाय! उनके इस भोलेपन पर उसे मन ही मन हँसी आ गई। उसे रोकते हुए उसने बात बदलकर कहा—भौजी, आज मुझे माँ की यह गोद मिल गई, अब मैं किसी झगड़े-झंझट से नहीं डरता।

(३)

पार्वती को लौटे हुए कई दिन हो चुके। शोभाराम को गुस्सा आ रहा था कि गाँव पर ऐसा क्या काम रक्खा है जो दादा अभी तक नहीं आये। इतने समय में वह तो पूरी दुनिया का चक्कर लगा आता।

घर के नौकर वंसा के साथ आँगन के कौड़े पर बैठा-बैठा वह हाथ सेंक रहा था। वंसा ने कंडी के एक टुकड़े से आग उखेरते हुए कहा—हम कहते हैं कि दादा नदी के परले पार के गाँव गये हैं, वहाँ वाले भी कहते होंगे कि परले पार के गाँव से आये हैं। दोनों में से सच किसकी बात है?

वंसा के इस अचिन्तनीय प्रश्न से चकित होने के पहले ही शोभाराम उठकर बोल उठा—अरे, दादा आ गये!

दयाराम ने गम्भीर भाव से घर में प्रवेश किया। शोभाराम ने उल्लास के साथ कहा—दादा, भौजी आ गई हैं। आपने गाँव पर बहुत दिन लगा दिये।

दयाराम ने हाँ या हूँ क्या कहा सो तो शोभाराम न समझ सका, परन्तु इतना उसकी समझ में आ गया कि यह

बात उन्हें पहले ही मालूम है। उसका उल्लास तुरन्त ही आधा रह गया। ये गाँव वाले भी कैसे हैं कि घर के लोगों से घर की निजू बातें कहने का भी अवसर उसे नहीं देना चाहते !

परन्तु गाँव वालों से भी अधिक गुस्सा आया उसे हुक्के पर। भौजी इतने दिनों बाहर रहकर तीर्थ करके लौटी हैं, पहले उनके पास जाकर उनका कुशल-समाचार लेना तो दूर की बात, दादा मूँज से बुने पीढ़े पर बैठ कर वंसा को हुक्म दे उठे—हुक्का भर। इसमें पानी कर लिया ?

भीतर जाकर भौजी को दादा के आ जाने का समाचार देने का भी उसका जी न चाहा। उठकर धीरे से बाहर चला गया।

बाहर उसे सड़क पर जाते हुए मिल गये गंगादीन तिवारी। वृद्धावस्था, ऊँचा-पूरा सबल शरीर, सिर पर बड़े बड़े बाल, भरी हुई भूरी दाढ़ी, गले में मोटे दानों की कण्ठी, माथे पर लम्बा-चौड़ा टीका और पीले रङ्ग का घुटनों तक फैला हुआ ढीला-ढीला कुरता आदि वे समस्त उपकरण उनकी देह में विद्यमान थे, जिनको लेकर वर्तमान मासिक-पुस्तकों के सुलभ चित्रकार किसी प्राचीन ऋषि का चित्र बात की बात में तैयार कर डालते हैं। शोभाराम का उनकी वेश-भूषा में न जानें ऐसा क्या दिखाई देता था कि उसके जी में चिढ़ पैदा होती थी। इसलिए वह पहले उन्हें प्रणाम नहीं करता था। परन्तु हमारे तिवारीजी पुरातन काल से ऋषियों

की भाँति 'क्रोधस्वी' न थे। मुहँ फेर कर चुपचाप जाते हुए अपने यजमान के प्रति दूर से ही—'आशीर्वाद भैया!' कह कर वे अपना कर्त्तव्य दूसरे की सहायता के बिना स्वतः ही पूरा करने लगे। तब से शोभाराम कुछ कुछ नम्र हो गया था। सामने देखकर इच्छा न रहने पर भी उसने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"जीते रहो भैया! तुम्हारे दादा अभी तक गाँव से नहीं लौटे?"

"अभी अभी आये हैं"—कहकर शोभाराम एक ओर चला गया। उसने मन में सोचा, घन्टे दो घन्टे से पहले दादा का पिण्ड ये क्या छोड़ेंगे?

गङ्गादीन ने घर में प्रवेश करते हुए दयाराम के प्रणाम का प्रत्युत्तर देकर हँसते हुए कहा—गाँव से अभी अभी आ रहे हो?—मानों अपनी त्रिकालदर्शिता के प्रभाव से ही उन्होंने यह बात जानी है।

"हाँ।"

"तुम तो गाँव पर गये थे, यहाँ एक नया झगड़ा खड़ा हो गया है।"

दयाराम ने किसी तरह का औत्सुक्य नहीं प्रकट किया। साधारण भाव से ही पूछा—कैसा झगड़ा?

गंगादीन ने कहा—अभी बहू जब प्रयाग गई थीं तब कौसा भी अपनी लड़की को लेकर गई थी। और भी बहुत

लोग गये थे। एक दिन वहाँ लड़की भीड़ में कहीं संग-छूट हो गई।

दयाराम ने कहा—हाँ, मालूम है।

गंगादीन विस्मय के साथ कह उठे—मालूम है! तुम तो बाहर थे, फिर कैसे मालूम हो गया?

"यों ही सुन लिया।"

"तभी तो। बड़े आदमियों के कान और आँखें भी बड़ी होती हैं! वे सब ओर का देख और सुन न सकें तो भगवान् उन्हें बड़ा आदमी ही क्यों बनावे? किशोरी के अकेले बाहर रहने की बात को लेकर कुछ दुष्ट झगड़ा खड़ा कर देना चाहते हैं। कहते हैं, अब उस लड़की का क्या ठीक? आये बड़े ठीक वाले! एक एक को ठीक न कर दिया तो कहना तुम।"

"नहीं तिवारीजी, उन लोगों का अभिप्राय बुरा नहीं जान पड़ता। अच्छी हो या बुरी, जिस लड़की की ऐसी बुराई फैल चुकी है, हम भी उसे अपनी बहू कैसे बना सकते हैं? आज ही मैं उन लोगों से यह बात कहला दूँगा। वे अपना दूसरा प्रबन्ध करें।"

तीसरे सप्तक के निषाद से उतरकर पहले सप्तक के षड्ज पर एक दम आ जाने में गङ्गादीन को विशेष कष्ट नहीं करना पड़ा। विना हिचकिचाहट के उन्होंने कहा—जरूर कहला देना चाहिए। मैं तो जाकर स्वयं कौसा से यह बात कह आना चाहता था। फिर सोचा—जल्दी क्या है, पहले भैया से

तो बात कर लूँ। मैं हजार आदमियों में तुम्हारी बड़ाई करूँगा। तुमने मेरे मन की बात जान ली। 'सिय पिय की मन जानन हारी', गुसाईंजी ने ऐसे ही अवसर के लिए कहा है। और बहू भी तो साक्षात् लक्ष्मी हैं! वे प्रयाग में ही थीं, जब यह अनाचार हुआ। वे भी यह विवाह कैसे होने देतीं?

"नहीं, अभी उनसे मेरी कोई बात नहीं हुई। फिर भी वे यह बात थोड़े कह देंगी कि वे बराबर उस लड़की के साथ थीं।"

"सो तो है ही। मैंने कहा नहीं, बहू साक्षात् लक्ष्मी हैं। शोभू का सम्बन्ध लखपतियों के यहाँ हो सकता है; वे एक दम दयाल न हो जातीं तो क्या यह सगाई हो सकती? मैंने उसी समय कह दिया था, जो सम्बन्ध बराबर वालों में किया जाता है, वही शास्त्र-सम्मत है। कुछ हो भैया, मैं तुम्हारी बड़ाई करूँगा। तुमने शास्त्र की आज्ञा के अनुसार ही अपना निर्णय किया है।"

दयाराम की बुद्धिमत्ता की फिर फिर प्रशंसा करके और आवश्यकता पड़ने पर आधी रात के समय भी बुलवा लेने की बात कहकर गङ्गादीन चले गये।

दयाराम का स्वभाव कुछ विचित्र ढंग का है। उनके निकट प्रत्येक तर्क का उत्तर एक मौन है। मितव्ययी ही नहीं वे मितभाषी भी हैं। इसलिए जब उन्होंने शोभाराम की पहली सगाई तोड़ कर फिर से दूसरी जगह बात पक्की कर ली, तब इस विषय में पार्वती का समस्त विरोध उस आघात की तरह अपने आप निष्फल हो गया, जिसके सामने प्रतिघात की छाया भी नहीं होती। एक बार बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि उन्हें गाँव पर प्रयाग से लौटे हुए कुछ तीर्थ-यात्री मिले थे। परन्तु सगाई तोड़ देने की बात से इस बात का क्या सम्बन्ध है, यह रहस्य उसकी समझ में न आ सका और बार बार उसके चित्त को यह विचार पीड़ा पहुँचाने लगा कि इतर जनों के दिये हुए निन्द्य अपवाद के कारण वे क्यों अपनी मानी हुई बहू के ऊपर यह अविचार करने जा रहे हैं। अपवाद तो अँगीठी के उस धुए के समान है, जो इस ओर भी जाकर नहीं बैठने देता और उस ओर भी।

परन्तु शोभाराम मन-ही-मन इस सम्बन्ध-विच्छेद से प्रसन्न है। फिर भी भौजी की विषाद-खिन्न मूर्ति देख कर उसे दुःख होता है। उसके कुछ समवयस्कों ने अपनी कल्पना को सत्य का रूप देकर किशोरी के खो जाने के सम्बन्ध की उसे कुछ ऐसी बातें सुनाई हैं, जिन्हें वह अपने से छोटों के सामने भी नहीं कह सकता। इसलिए उसके हृदय को खिन्नता और आल्हाद रात-दिन के उस जोड़े के समान एक साथ मिले हुए हैं, जिसमें रात कृष्ण पक्ष की होने पर भी खुले दिन का मान कुछ अधिक होता है। वह भौजी को खिन्नता दूर कर देना चाहता है, परन्तु उसे कोई उपाय नहीं दिखाई देता।

ऐसे ही ऐसे में एक दिन दूसरी जगह का नाई शोभाराम का दूसरा सम्बन्ध पक्का करने के लिए आ पहुँचा। पार्वती अपना दोपहर का काम पूरा करके चूनादानी में पानी डाल कर चूना ठीक कर रही थी, इतने में बंसा ने आकर कहा—कक्की, पिरथीपुर का नाई आया है। उसे खिलाने के लिए झट-से हलुआ-पूड़ी तैयार कर देने के लिए दादा ने कहा है।

पार्वती सहसा गरम हो उठी। बोली—अभी दोपहर के उसार से तो छुट्टी मिली नहीं और इसी समय तू यह हुकूमत करने आ गया! तबीयत ठीक नहीं, मैं क्या क्या करूँ?

बंसा को विश्वास नहीं हुआ कि कक्की की तबीयत ठीक नहीं है। तीर्थ से जब लौटी थीं तब तो अच्छी तरह

बोलते भी नहीं बनता था, फिर भी सब काम-काज सकेलती थीं और आज शोभू भैया के सम्बन्ध के लिए बड़े घर का नाई आया है तो इस तरह बिगड़ती हैं। हँसकर बोला—तो जाकर कह दूं, उसके लिए बाजार से मिठाई मँगा दी जाय? सगाई के लिए जो नाई आता है, उसे निमकीन तो कुछ खिलाया जा नहीं सकता। नहीं तो बड़े घर की लड़की है— ऐसी लड़ने वाली बहू मिलेगी कि कक्की को भी किसीकी याद आयगी।

पार्वती और भी चिढ़ गई। बोली—जा, लाना है तो बाजार से ही ले आ।

वंसा छुटपन से इस घर में काम करता है। इसलिए वह जानता है कि क्रोध की यह ज्वाला ऐसी नहीं है कि इससे डरा जाय, यह तो हाथ सेंक कर शरीर गरमा लेने की ही वस्तु है। उसने कहा—कक्की आज तो गरम हो रही हैं, किन्तु जब सोने के गहनों से लदी बहू देखेंगी तब छाती सिरा जायगी। यहीं गाँव के गाँव में बारात जाती तो क्या मजा रहता। अब बाहर जाकर हम भी नवाब बन लेंगे।

पार्वती एकाएक सुस्त पड़ गई। क्रोध के स्थान पर एक करुण-वेदना उसके मुख-मण्डल पर परिव्याप्त हो उठी। देख कर वंसा को दुःख हुआ। अनुतप्त हो कर बोला— नाराज हो गईं कक्की? बारात में मैं कुछ नवाबी कर लूँगा

तो नवाब थोड़े हो जाऊँगा; रहूँगा तुम्हारा चाकर ही।

पार्वती ने चुप-चाप एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। बंसा न सोचा—सचमुच आज इनका जी अच्छा नहीं है। नहीं तो ऐसे अवसर पर उदासी का क्या काम। दयाराम ने गाँव से लौट कर उसे अपने किसी खेत पर काम के लिए भेज दिया था, इसलिए वह नहीं जानता था कि इस विवाह की बात को लेकर स्वामी-स्त्री में कितना क्या हो चुका है। बोला—अच्छा, इस बाहर के चूल्हे को सुलगाये मैं देता हूँ, तुम यहीं बैठे बैठे सब सामान कर लो। तुम्हें ज्यादा तकलीफ न होगी।

चूल्हा सुलगाते-सुलगाते उसकी कल्पना सजग हो उठी। बोला—कक्की, बारात में स्त्रियों को ले चलने का चलन नहीं है, नहीं तो चल कर तुम देखतीं, वहाँ कैसा रँग बरसता है।

पार्वती के अभिमान को प्रकट होने के लिए जगह मिल गई। सूखे मुँह से बोली—भैया, हम लोगों की बात कौन पूछता है। स्त्रियाँ तो केवल बाँदियों की तरह काम करने को हैं।

अपने किशोर आनन पर आश्चर्य का भाव लाते हुए चूल्हे पर से मुँह मोड़ कर बंसा ने कहा—बाँदी? किसीकी कक्की भी कहीं बाँदियों की तरह हो सकती है!

पार्वती को हँसते देख कर बंसा का उत्साह और

बढ़ गया। बोला—सुनते हैं, लड़का वाले बड़े मस्त आदमी हैं। उनके यहाँ हजार बीघे की खेती होती है। पक्की बनी हुई बहुत बड़ी हवेली है। घर पर बड़े-बड़े हाकिम मिलने के लिए आते रहते हैं।—कहते कहते उसे अपनी बात स्वयं खटक गई; यह सोच कर कि इससे अपनी हीनता प्रकट हो रही है। झट अपना रुख पलट कर वह फिर कहने लगा—और हम लोग भी क्या किसीसे कम हैं? अपने यहाँ हाकिम लोग नहीं आते, सो आजकल तो अखबार वाले यही लिखते रहते हैं कि इन लोगों से मिलने-जुलने का कोई काम नहीं है।

विषय-परिवर्त्तन से पार्वती को प्रसन्नता हुई। चूल्हे पर कड़ाही चढ़ाते हुए उसने प्रश्न किया—हाकिमों से मिलने-जुलने से तो बड़प्पन आता है, फिर इनसे मिलना-जुलना क्यों न चाहिए?

वंसा ने अपने ज्ञान के गौरव का अनुभव करते हुए कहा—हर्गिज नहीं मिलना चाहिए। ये लोग गरीबों के गले पर छुरी फेरते हैं न। परन्तु कक्की, इन अखबारों की बातें भी सब सच नहीं होतीं। सुन कर मैं फौरन बता सकता हूँ कि कौन बात सच है और कौन झूठ।

पार्वती ने विस्मय के साथ कहा—अखबार वाले कोरे कागज पर झूठ लिखते हैं?

वंसा ने कहा—सो क्या हुआ कक्की? जितने बड़े

आदमी होते हैं उन सबको झूठ से काम लेना पड़ता है। इन पिरथीपुर वालों को ही लो। अदालत में इनके इतने मामले-मुकद्दमे चलते हैं, अगर कागज पर सच ही सच लिखें तो सिर की पगड़ी कभी की उड़ जाय। अच्छा, एक बात तो बताओ।

"क्या ?"

"आज बाजार में कुछ लोग हमारी हँसी उड़ा रहे थे कि पिरथीपुर वालों का लड़का उनकी लड़की ही है। दादा शोभू भैया को उनकी लड़की बना कर बारात ले जाँयगे और वे वहाँ ससुराल में बहू बन कर रहेंगे। ठीक है यह बात ?"

"मैं क्या जानूँ।"

"तुम्हें तो मालूम है नहीं और इन गाँव वालों को सब मालूम हो गया ! सच मानों कक्को, यहाँ के आदमी आदमी नहीं हैं, चमार हैं। किसीका भला नहीं देख सकते। गुस्सा तो मुझे बहुत आया, परन्तु मैं तरह देकर चला आया।"

वैसा तरह देकर तो नहीं चला आया था, वहाँ उसने किसी पर हाथ नहीं चला दिया यही बहुत है। इस सम्बन्ध में पार्वती को भी उसका विश्वास न था, परन्तु इस अविश्वास से इस समय उसे कुछ प्रसन्नता नहीं हुई, यह नहीं कहा जा सकता। बोली—देख, किसीसे लड़ना-झगड़ना अच्छा नहीं होता। तू किसीसे लड़ेगा तो मैं तेरा मुहँ न देखूँगी।

वंसा ने कहा—मैं कब किसीसे लड़ता हूँ ? उस बार जब बुद्धा को खून निकल आया, तब से तुम्हीं बताओ, तुमने कोई बात सुनी ?

कड़ाही में घी छोड़ कर पार्वती उसमें करछुली चलाने लगी। एक ओर हट कर वंसा बोला—कक्की, तुमने यह बहुत अच्छा किया जो गाँव की सगाई छोड़ दी। किशोरी तो कुछ साँवली है, परन्तु कहते हैं, पिरथीपुर की लड़की खूब गोरी-चिट्टी है। दादा को मालूम न हो और तुम एक दिन के लिए मुझे छुट्टी दे दो तो मैं उसे देख कर तुरन्त लौट आऊँ। किसीको पता भी न लगेगा कि कहाँ का कौन आया था।

"क्या लल्ला ने तुमसे कुछ कहा है ?"

"अरे शोभू भैया को इन बातों का क्या ज्ञान ? वे तो दूल्हा बन कर चुपचाप मण्डप के नीचे बैठ जाँयगे। उनसे अधिक तो मैं समझता हूँ। उनकी एक बात सुन कर मुझे बड़ी हँसी आई।"

"क्या ?"

"वे कहते थे, मेरी माँ मुझे बहुत छोटा छोड़ कर मर गई थी। अब मैंने एक माँ गोद ले ली है। लड़का तो गोद लिया जाता है; तुम्हीं कहो, कहीं माँ भी गोद ली जाती है ? उन्होंने किसी बुढ़िया को माँ बना कर गोद लिया तो वह भी चट से मर जायगी और फिर वही झंझट। हाँ, तुम जैसी मिलें तो मैं दो तीन माएँ बना सकता हूँ।

"तो फिर तू मुझे खिलाय-पिलायगा तो ?"

"वाह. मैं क्यों खिलाऊँ-पिलाऊँगा ? जिस तरह तुम अभी खिलाती-पिलाती हो उसी तरह तब भी करोगी। हाँ, तब मैं तुमसे केवल लड़ूँ-झगड़ूँगा और तुम्हारे भाँड़े-बर्त्तन तोड़-फोड़ कर चिल्लाया करूँगा। माँ के होने में यही तो मजा है !"

पार्वती के मुख पर हँसी के साथ मातृत्व की करुण भावना प्रकट हो उठी। बंसा ने कहा—शोभू भैया कहते हैं कि वे छुटपन से ही तुमसे भौजी कहते रहे हैं, इसलिए तुम्हें माँ कहते अब उन्हें शरम लगेगी; परन्तु मुझे तो इसमें शरम की कोई बात नहीं दिखाई देती।

पार्वती सब सामान तैयार करके बोली—एक दौना उठा ला। चख कर देख ले, मोहन-भोग खारी तो नहीं हो गया; और नाई को बुला कर उसे खिला-पिला दे। लल्ला तो उसे परोसेंगे नहीं।

बंसा खुशी-खुशी दौना लेने दौड़ कर चला गया।

(५)

किशोरी के गाँव वाले सम्बन्ध के विषय में कौसल्या को उसी समय से आशंका हो गई थी, जिस समय मेला में भूली हुई किशोरी को दूसरे दिन स्वयंसेवक उसके पास पहुँचा गये थे और गाँव के कुछ सहयात्रियों ने वयःप्राप्त लड़की के रात में बाहर रहने पर अपना जघन्य सन्देह निर्लज्जता के साथ प्रकट कर दिया था। परन्तु आज जब उसने एक पड़ौसिन के मुहँ से सुना कि शोभाराम की सगाई पक्की करने के लिए दूसरी जगह से नाई आ गया है, तब वह एकदम आपे से बाहर हो गई। दयाराम के पास जाकर उन्हें जी भर कर खरी-खोटी बातें सुना आने के लिए जोर से बड़बड़ाती हुई वह तुरन्त घर के बाहर निकल पड़ी। दौड़ कर किशोरी ने झट से उसके हाथ पकड़ लिये। बोली—कहाँ जाती हो माँ ?

कौसल्या ने अपने हाथ छुड़ाते हुए कहा—छोड़ दे, जहाँ जाना होगा जाऊँगी; तुझे क्या ?

लाड़-प्यार में पली एकमात्र लड़की होने के कारण किशोरी को वाणी में अधिकार का बल था। उसने अवि-

चलित दृढ़ता के साथ कहा—नहीं माँ, तुम्हें वहाँ मैं किसी तरह न जाने दूँगी। चलो, भीतर चलो।

हल्ला-गुल्ला सुन कर पास के घरों के अनेक स्त्री-पुरुष आकर इकट्ठे हो गये थे। कौसल्या के भीतर जो उग्र नारी मूर्ति एकाएक उठ खड़ी हुई थी, वह भीड़ में से आई हुई 'क्या, कहाँ और क्यों' की चोटें क्षण भर के लिए भी न सह सकी। अपने दुःख-कष्ट की बातें सबके सामने कहते-फिरने का अभ्यास उसे न था। इतने में ही उसके अन्तरात्मा ने अनुभव कर लिया कि बिना कुछ सोचे-समझे वह जिस काम के करने के लिए उठ कर चल पड़ी थी, उसे दूसरी स्त्रियाँ कर सकती हैं, परन्तु वह नहीं। एक स्त्री के यह कहने पर कि 'भीतर ले जा किशोरी, कहीं कुआ-बावड़ी में जाकर न गिर पड़ें; ऐसे में विचार-बुद्धि मारी जाती है'—वह और भी शिथिल पड़ गई। किशोरी ने भीड़ के प्रश्नों का उत्तर दिये बिना, माँ को भीतर ले जाकर खटाक से किवाड़ बन्द कर लिये।

माँ एक जगह धम से बैठ कर रोने लगी। उन्हें वहीं छोड़ कर वह अँधेरे भण्डार-घर में जाकर रसोई की सामग्री ठीक करने लगी।

दो घण्टे बाद रसोईघर से निकल कर किशोरी ने कहा—माँ, अब उठ कर नहा लो, ठाकुरजी के भोग के लिए रसोई तैयार हो गई है।

कौसल्या के आँसू इस समय तक सूख गये थे। लड़की को घर का सब काम यथा-पूर्व करते देख कर उसकी आँखें फिर भर आईं। अपना कठोर आदेश सुना कर किशोरी फिर रसोईघर में चली गई थी। माँ के उठने की कोई आहट न पाकर थोड़ी देर बाद उसने वहीं से फिर कहा—माँ उठो, मुझे भूख लग रही है। ठाकुर-पूजा होनी है।

कौसल्या ने उत्तर दिया—बिन्नो, ठाकुर-पूजा आज तू कर ले। मेरा जी ठिकाने नहीं है, मैं फिर नहा लूँगी।

किशोरी ने अभिमान-भरे स्वर में कहा—अच्छी बात है, जब तुम्हारा जी ठिकाने आ जाय तब ठाकुर-पूजा कर लेना। मुझसे तुम्हारे ठाकुरजी की—

कहते कहते कुण्ठित हो कर वह स्वयं रुक गई। भगवान् के सम्बन्ध में कुछ कठोरता प्रदर्शित करके वह माँ को क्रुद्ध कर देना चाहती थी, परन्तु अपने अन्तरात्मा के विरुद्ध कुछ कहने जाकर अनुताप के भार से वह स्वयं ही दब गई। आज प्रातःकाल से ही विषम क्रोध के कारण वह भीतर ही भीतर जल रही थी। जननी का व्याकुल रुदन उसे और भी खल रहा था। जिन लोगों ने निर्दयता-पूर्वक माँ के कोमल हृदय पर इतना बड़ा आघात न-कुछ बात के लिए कर डाला है, उन तक किसी तरह यह बात पहुँचा देने के लिए वह निरन्तर छटपटा रही थी कि तुम्हारी यह क्रूरता हमें अणुमात्र भी विचलित नहीं

कर सकी। इसीलिए आज वह कुछ कठोर-सी प्रतीत हो रही थी। परन्तु वह भी स्वयं यह बात न जानती थी कि ग्रीष्म के उत्तप्त आकाश के किसी कोने में बरसा का मेघ भी अलक्षित भाव से किसी अवसर की प्रतीक्षा में छिपा बैठा है। ठाकुर-पूजा के विरुद्ध कुछ कहने जाते ही उसके कपोलों पर से आँसुओं की बूँदें धीरे धीरे बह चलीं। अपनी अशिष्टता के लिए मन-ही-मन गृह-देवता से क्षमा-प्रार्थना करके बार बार वह अपना माथा धरती पर टेकने लगी।

परन्तु माँ कुछ न समझ सकी कि लड़की क्या कहने जाकर क्यों रुक गई। थोड़ी देर बाद आँसुओं का चिह्न तक पोंछ कर किशोरी धीरे धीरे जाकर माँ के सामने खड़ी हो गई। नम्र स्वर से बोली—माँ, गरम पानी ठंढा हुआ जा रहा है, उठ कर नहा लो। इस तरह बैठे बैठे तबीयत और भी बिगड़ जायगी।

सदैव सतेज वाणी में बोलने वाली लड़की का दीन कण्ठ माँ के हृदय में उस काँटे की तरह चुभ गया, जिसकी नोंक सूक्ष्म होती है। सिर ऊपर उठाते हुए उसने आकुल होकर कहा—बिन्नी, चिन्ता न कर; जमराज भी मेरा कुछ नहीं कर सकते। परन्तु तनिक तू तो मेरे पास यहाँ आकर बैठ, मेरा जी न जानें कैसा हो रहा है।

किशोरी इस समय माँ से दूर दूर रहना चाहती थी

सन्देह ही सन्देह के आधार पर उसके ऊपर जो इतना बड़ा अत्याचार कर डाला गया है, उसकी चर्चा की छाया भी उसे अस्पृश्य जान पड़ रही थी। परन्तु वह माँ की बात न टाल सकी। निर्वाक्, निस्पन्द होकर कठोर मूर्ति की भाँति उसके सामने जाकर बैठ गई। वह अपनी माँ के ऊपर शासन-कारिणी तो थी; परन्तु उस एकान्त भक्त की ही भाँति, जो अपने इष्ट देवता से निरन्तर काम लेकर भी उनकी अनुज्ञा के बाहर एक पग भी नहीं चल सकता।

माँ ने कहा—बिन्नी, तूने मुझे वहाँ जाने क्यों नहीं दिया? क्या मैं ऐसी लड़ाकी हूँ कि उनसे लड़ने के सिवा दूसरी बात ही न करती? वे चाहे जैसे हों, परन्तु यह नहीं हो सकता कि एक माँ के हृदय के दुःख को जान कर भी उन्हें दया न आती।

इस दया-भिक्षा की बात से किशोरी का जी फिर जल उठा। यथासाध्य अपने को संयम में रख कर उसने कहा—नहीं माँ, तुम लड़ाकी नहीं हो। होती तो तुम्हारे विरुद्ध कभी कोई कुछ कर न सकता। परन्तु मैं किसीके सामने जाकर तुम्हें हाथ न पसारने दूँगी।

इतने में ही अपनी बात समाप्त करके लड़की को उठते देख कर कौसल्या ने प्यार से उसे मनाते हुए कहा—नहीं बिन्नी, यह लड़कपन ठीक नहीं है। क्या तू अपनी दुखिया माँ के पास दो घड़ी भी जम कर नहीं बैठ सकती? अकेले

में मेरा जो और ज्यादा घबराता है।

"अच्छी बात है, तुम्हारा जी न घबरावे, मैं यहीं बैठी रहूँगी"—कह कर किशोरी माँ से कुछ दूर तिरछी ओर मुँह करके फिर बैठ गई। कौसल्या ने कहा—तू मुझे किसीके सामने जाकर हाथ नहीं पसारने देना चाहती। परन्तु उनके सामने जाकर कुछ कहने में क्या बुराई है, जिन्हें मैंने अपनी छाती का धन सौंपने का संकल्प कर लिया था?

किशोरी चुपचाप बैठी सुनती रही। माँ समझ न सकी कि लड़की का यह मौन अभिमान-मूलक है या सम्मति-सूचक। बोली—हाँ, तो क्या कहती है बिन्नी?

किशोरी एकाएक उठ खड़ी हो कर तीक्ष्ण स्वर में कहने लगी—इस तरह 'बिन्नी-बिन्नी' करने से तुम्हारी घबराहट जनम भर दूर न हो सकेगी माँ। मैंने कह दिया कि यदि तुम किसीके यहाँ कुछ कहने जाओगी तो मैं पत्थर पर सिर पटक कर मर जाऊँगी।

कौसल्या को दयाराम के पास जाकर कुछ कहने के लिए अपने भीतर से स्वयं कुछ बल नहीं मिल रहा था। कदाचित् इसीलिए वह लड़की से हाँमी भरवा कर अपनी उस कमी को पूरा कर लेना चाहती थी। परन्तु उसके इस विद्रोहाचरण से सहसा भड़क कर वह जोर से बोल उठी—मर जा अभागी मर जा! उस दिन भीड़ में वहीं कुचल कर मर जाती तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता?

झट-से माँ की ओर लौट कर उसकी आँखों में अपनी आँखें मिलाते हुए किशोरी ने दर्पोज्वल मुख से कहा—सच कहती हो माँ ? यदि तुम्हें इससे सुख मिले तो यह कुछ बहुत बड़ी बात नहीं है ।

माँ की बुद्धि अपने आपे में न थी । उसने चिल्ला कर कहा—बड़ी मरने वाली आई ! ऐसी होती तो दूसरों के मुँह से ऐसी बुरी बुरी बातें सुनने के लिए न बैठी रहती । हट, दूर हो; जा मेरे सामने से !

किशोरी की चेष्टा निर्विकार होकर शान्त हो गई थी । उसने अकम्पित स्वर में कहा—अच्छी बात है माँ, ऐसा ही होगा । मैंने रसोई तैयार कर रक्खी है, तुम नहा-धोकर, पूजा करके एक बार मेरे हाथ से खा लो; फिर तुम जो कह रही हो उसे पूरा करने में मैं पीछे न हटूँगी । मैं जानती हूँ, मेरे बाद तुम भी न बचोगी । परन्तु उस समय तुम्हारे जी को किसी तरह का खुटका नहीं रहेगा, यही मुझे सन्तोष है ।

किशोरी का शान्त कथन सुन कर कौसल्या का क्रोध एक क्षण में ही ठण्डा हो गया । घबरा कर लड़की को अपनी ओर खींच कर उसने छाती से लगा लिया । अश्रु-रुद्ध अस्फुट वाणी से बोली—बिन्नी, ऐसी बातें अपनी दुखिया माँ को न सुना । ऐसे में तू भी मेरी बात का बुरा मानेगी तो फिर मुझे ठौर कहाँ मिलेगा ।

माँ को रोते देख किशोरी भी रो पड़ी। बोली—नहीं माँ, तुम्हारी बात का मुझे बुरा नहीं लगा। माँ के जी का दुःख दूर करने के लिए ऐसी अभागी लड़की कौन होगी जो सब कुछ करने के लिए तैयार न हो जाय? परन्तु जिनका हृदय पत्थर का है, उनके सामने हाथ पसार कर तुम भीख माँगने जाओ, मैं यह नहीं देख सकती।

माँ ने कहा—नहीं बिन्नो, इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। लल्ला के साथ मैंने तेरी सगाई ही पक्की नहीं की है, वरन् मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने उनके हाथ में तेरा हाथ भी सौंप दिया है। न जानें कितनी बार मन-ही-मन मैं तुम दोनों को एक साथ घर-गिरस्ती चला कर सुखी होते देख चुकी हूँ। वे लोग कोई अपने दूसरे नहीं हैं। पत्थर के हृदय के हों या और चाहे जैसे, हैं तो अपने ही। एक बार फिर प्राण-पण से चेष्टा कर लेने में बुराई नहीं है।

किशोरी स्तब्ध हो कर सुनती रही। थोड़ी देर बाद धक्का देकर मानों उस स्तब्धता को तोड़ती हुई एकाएक बोल उठी—माँ, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, नहा कर पहले ठाकुर-पूजा कर लो फिर जो होना होगा हो जायगा। देखो, धूप जलघरे पर आकर लौट गई है। तुमने मुझे छू लिया, मैं तो पूजा कर नहीं सकती; तुम्हींको उठना पड़ेगा।

हिन्दू-माता चिरकाल से अपनी कन्या को गौरी और दुर्गा के रूप में प्रसव करती आई है। इसलिए लड़की के पैर

पड़ने की बात सुन कर कौसल्या व्यतिव्यस्त होकर बोल उठी—पैर पड़ कर बिन्नी, मुझे नरक की ओर क्यों ठेलती है ? मेरी तबीयत देर से खाने में बिगड़ जायगी, इस डर से ही तू बार बार पूजा कर लेने के लिए कह रही है; परन्तु इस अभागे शरीर का साक्षात् यम भी कुछ नहीं कर सकता और आज ठाकुरजी को भी तो मालूम हो जाय कि अभागी माँ-बेटियों के ऊपर कुछ संकट है।

"किशोरी ! किशोरी द्वार तो खोल।"

कौसल्या ने कहा—देख तो बिन्नी, कोई बुला रहा है।

ऐसे में किसीका आना किशोरी को अच्छा नहीं जान पड़ा था, इसलिए उसने आवाज सुन कर भी अनसुनी कर देनी चाही थी। माँ की बात सुन कर—दुबे मामा हैं—कह कर अनिच्छा-पूर्वक उठ कर किवाड़ खोलने के लिए चली गई।

हरिराम को देख कर कौसल्या फिर रो पड़ी। आज उसके हृदय का समस्त रक्त पानी बन कर क्षण क्षण में आँखों से निकला पड़ता था। उसे आग से उत्तप्त होकर उफनते हुए दूध की तरह यह सोचने का अवकाश न था कि पात्र के बाहर चारों ओर भी आग का ही उत्ताप है, पानी की शीतलता नहीं। वह बोली—भैया, आज मुझे तुम्हारी ही याद आ रही थी कि ऐसे में क्या तुम भी मेरी खबर न लोगे ?

हरिराम ने हँसते हुए कहा—बैन, मैं बाहर गया हुआ था, इसीसे इस बीच में न आ सका। मुझे भी किशोरी के

सम्बन्ध की उधेड़बुन के मारे रात में नींद नहीं आती थी। परन्तु भगवान् सबका सुभीता लगाने वाले हैं। अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। जान पड़ता है, अभी तक तुमने खाया-पिया नहीं है। उठ कर निश्चिन्त हो कर अब तुम खाओ-पियो। मैंने सब ठीक-ठाक कर लिया है।

मेघों से भरे अँधेरे आकाश में बिजली की ज्योति की भाँति आनन्द की एक उज्वल आभा एकाएक कौसल्या के मुख के ऊपर दौड़ गई। उत्सुक होकर उसने पूछा—तो क्या दयाराम लाला राजी हो गये?

हरिराम ने मुहँ बिगाड़ कर कहा—दयाराम क्या राजी होगा? वह तो ऐसा रूखा आदमी है कि उसका सब धर्म-कर्म और पूजा-पाठ पैसे को छोड़ कर और कुछ नहीं है। उससे बात करने का भी धर्म है? उस दिन उसने मुझे ऐसी बुरी तरह जवाब दे दिया कि मैं तो अब उसकी सूरत भी न देखूँगा। बालू में से तेल निकलाने जाना और उससे कुछ आशा करना दोनों बराबर हैं।

कौसल्या ने शंकित होकर पूछा—तो क्या पार्वती या लल्ला ने कुछ—

हरिराम अब जोर से हँस पड़ा। बोला—बैंन, तुम भी बड़ी भोली हो। अरे, जैसा नदी-नाला, वैसे ही उसके भरके! पार्वती या शोभू क्या कर सकते हैं, जब दयाराम ही कोई बात नहीं सुनना चाहता?

कौसल्या की प्रसन्नता एक क्षण में ही मुरझा कर सूख गई। वह कोई प्रश्न भी न कर सकी। हरिराम ने कहा—मैंने तुमसे बेहटा के जिस लड़के के सम्बन्ध में कहा था, वह विवाह के लिए तैयार है। मैंने जन्म-पत्र मिला लिया है, मिलाप ऐसा मिला है, मानों भगवान् ने उसीके लिए किशोरी को पैदा किया हो। अवस्था भी उसकी पैंतीस से अधिक नहीं है, छत्तीसवीं साल ही चल रही है। घर कैसा है, इसका कहना ही क्या? तुम्हें डर था कि अब किशोरी का क्या होगा। मैंने उसी समय तुमसे कह न दिया था कि हरिराम के जीते-जी तुम इसकी चिन्ता न करो। किशोरी के बप्पा घर का सब भार मेरे ऊपर ही तो छोड़ गये थे। मुझसे जो कुछ हो सकता है, मैं उससे पीछे पैर न दूँगा।

उद्धार का ऐसा अचिन्तित मार्ग सामने खुला देख कर भी कौसल्या जड़-मूर्तिवत् जैसी-की-तैसी बैठी रह गई। क्षण भर के लिए उसके हृदय की गति भी रुक-सी गई; कदाचित् इस डर से कि खुला पथ देख कर बिना समझे-बूझे वह उस पर कहीं दो डग चल न पड़े! हरिराम जानता था कि ऐसा ही कुछ होगा, फिर भी उसे चिढ़ पैदा हुई। क्षुण्ण हो कर बोला—बैन, तुम्हें तो रोने-धोने से अवकाश ही नहीं है; इसलिए तुम नहीं जानती कि गाँव में दस आदमियों के

यदि किसी जगह किशोरी का सम्बन्ध झट-से नहीं हो जाता तो गाँव के कोरी-चमार भी अपने हाथ का पानी ग्रहण न करेंगे। मैंने बेहटा वालों को वचन दे दिया है कि सगाई परसों पक्की होगी और उतरते फागुन-फागुन में विवाह।

कौसल्या ने कहा—भया, इतनी जल्दी क्यों करते हो? दो दिन पीछे यह सब हो सकता है। दयाराम लाला से—

हरिराम बीच में ही बिगड़ कर बोल उठा—बस, तुम तो दयाराम-दयाराम की रट लगाये हो। मैं कह चुका हूँ कि तुम्हें मैं पत्थर के ऊपर सिर न पटकने दूँगा। पत्थर पर सिर पटकने से उसका तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, टूटती है अपनी ही खोपड़ी। मैं कहे देता हूँ, अब यह सम्बन्ध किसी तरह टल नहीं सकता। ओ किशोरी, कहाँ गई? अच्छी बिटिया है, माँ को अब तक खिलाने-पिलाने की सुध ही नहीं है इसे। उठो बेन, उठो; इस तरह दिन भर उपवास करने से काम न चलेगा।

हरिराम के आते ही किशोरी चुपचाप भीतर चली गई थी। गाँव के विरोधी दल का सामना हरिराम जिस तरह कर रहा था, वह उससे छिपा न था। इसलिए जब उसने गाँव वालों के सामने अपना सिर नीचा होने की बात माँ से कही, तब उसकी आत्मीयता के आगे श्रद्धा से उसका मस्तक झुक गया। उसके प्रति माँ के अयथोचित बर्ताव से वह अप्रसन्न हो रही थी। दयाराम के क्रूर व्यवहार के कारण

वह जो अपना क्षोभ प्रकट कर रहा था, उसमें उसको अपने जी का ही प्रतिविम्ब दिखाई दे रहा था। यदि संस्कार जनित संकोच बीच में बाधक न होता तो कदाचित् वह माँ के पास आकर यह कहने से किसी प्रकार न रुकती कि माँ, मामा जो कह रहे हैं, वह ठीक है। फिर भी हरिराम से पुकारी जाकर वह भीतर न रह सकी। परन्तु पास आकर उसके कुछ कहने के पहले ही कौसल्या उठ कर कह उठी—बिन्नी गरम पानी ले आ।

नहाने के लिए माँ के इस तरह विना और कुछ कहे-सुने एकाएक उठ पड़ने में हरिराम का जो अनादर प्रच्छन्न था, किशोरी को वह असह्य जान पड़ने लगा। उसको समझ में न आया कि क्या कह कर वह माँ के इस व्यवहार को क्षम्य और सरस कर दे। परन्तु हरिराम ने कौसल्या के उठने पर अपना हर्ष प्रकट करके जब सन्ध्या समय फिर आने की बात कही तब उसने आराम की साँस ली और उसे ऐसा जान पड़ा कि संसार में केवल एक यही व्यक्ति है जो भाई की तरह उसके समस्त अपराध सह कर भुला दे सकता है।

राष्ट्रों के पारस्परिक युद्ध-विग्रह आदि में जो काम अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-लब्ध राजनीतिज्ञ करते हैं, वही काम साधारण ग्राम-वासियों द्वारा उनके निजी क्षेत्रों में प्रति दिन अनायास ही होता रहता है। अर्थात्, यह बात जानने के लिए उन्हें विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है कि कौन संवाद किस आवश्यक परिशोधन-परिवर्द्धन के साथ कहाँ किस तरह पहुँचाना चाहिए। अतएव शोभाराम तक यह समाचार तार-समाचार की गति से ही पहुँच गया कि लड़की का विवाह-सम्बन्ध विच्छेद हो जाने की बात को लेकर आज कौसल्या कुएँ में गिरने जा रही थी, यदि किशोरी अपनी माँ को बीच से ही पकड़ ले जाकर घर के भीतर बन्द न कर देती तो यह अभिनय बहुत दूर तक चलता।

शोभाराम को जहाँ यह सोच कर हँसी आई कि स्त्रियाँ मृत्यु को कितना सहज और सरल समझती हैं, वहाँ इस विचार से क्रोध भी कम नहीं हुआ कि दादा की धर्म-भीरुता को उत्तेजित करके अपना काम करा लेने के लिए ही यह कुत्सित षड्यन्त्र रचा गया होगा। अब इस सम्बन्ध में भौजी का मतामत क्या है, यह जानने के लिए उसका जी अधीर हो उठा। परन्तु बड़ों के साथ विवाह-विषयक बात-चीत करना उसे दूसरों को धर्म-संगत सीमा पर आक्रमण करने के समान जान पड़ता था। इसलिए जिस तरह जिन दिनों बरसा का जल नहीं मिलता, उन दिनों खेतो के पौधे ओस की बूँदों से ही जीवन-रस ले लेते हैं, उसी तरह उसने इस विषय में वंसा से बातचीत कर लेनी चाही। नौकर है तो क्या, वह भी तो घर का एक अंग है!

उसे एकान्त में पाकर उसने पूछा—दूसरी जगह का नाई आने की बात सुन कर क्या भौजी बहुत सुस्त पड़ गई थीं?

वंसा ने कहा—नहीं, सुस्त क्यों पड़ेंगी? उसके लिए पूड़ी और मोहनभोग तो उन्होंने बनाया था। परन्तु मोहन-भोग पूड़ी के साथ अच्छा नहीं लगता, उसे तो अकेला ही खाना चाहिए।

शोभाराम इस समय रसना-शास्त्र की गम्भीर बातों पर विचार करने के लिये तैयार न था। उसने अपनी बात

जारी रक्खो—तो तुम्हें अच्छी तरह याद है, उन्हें इस नाई के आने का बुरा नहीं लगा ?

वंसा झटपट बोल उठा—हाँ-हाँ, उन्हें एक बात का बुरा लगा है। कहती थीं—हमें बारात में ले जाने के लिए कौन पूछेगा ?

"नहीं वंसा, उन्होंने यह बात न कही होगी। तुम्हें मालूम नहीं है, भौजी नहीं चाहतीं कि मेरी पहली सगाई टूटे। उन्होंने और कोई बात कही होगी।"

पार्वती की असहमति की बात सुन कर वंसा का उत्साह ढीला पड़ गया। बोला—इतने बड़े घर का सम्बन्ध भी कक्की को पसन्द नहीं है !

"बड़े या छोटे घर की बात नहीं है। वे कहती हैं, जब एक जगह वचन दिया जा चुका है तब उसे तोड़ना ठीक नहीं ?"

इस तर्क की निस्सारता समझ कर वंसा का उत्साह फिर बढ़ गया। झट से वह बोल उठा—भला यह भी कोई बात है ! कोई रोटी खा रहा हो और उसके सामने मोहनभोग आ जाय तो क्या वह उसके लिए रोटी छोड़ न देगा ?

शोभाराम के पास इस तर्क का उत्तर था, परन्तु उसने विषयान्तर नहीं होने दिया। बोला—और हाँ, वचन दूसरी जगह भी तो दिया जा चुका है। अब एक न एक वचन तो तोड़ना ही पड़ेगा।

वंसा ने प्रसन्न हो कर छाती पर अपना हाथ रखते हुए कहा—कक्को को मैं मना लूँगा मैं! सच मानों भैया, वे मेरी बात बहुत मानती हैं।

शोभाराम ने सूखी हँसी हँस कर कहा—तू उन्हें क्या मना लेगा, समझ में तो मेरी नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ?

वंसा सहसा गम्भीर हो गया। बोला—तो इसमें इतना घबराने की क्या बात है? तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है तो तुम कक्को के पास जाकर उनसे पूछ लो कि मैं क्या करूँ। उनसे अच्छी सलाह और कौन दे सकता है?

शोभाराम उसकी बात हँसी में न उड़ा सका। वंसा के सरल विश्वास ने उसकी समस्या अनायास ही सुलझा दी। उसे जान पड़ा कि अन्धकार से भरे हुए उसके अन्तःकरण में सहसा किसीने घी का दीपक जला दिया है, जिसमें आवश्यक प्रकाश के साथ साथ विशुद्धता भी है। उसने तुरन्त ही निश्चय कर लिया कि मैं इस सम्बन्ध में सब संकोच छोड़ भौजी से बात करूँगा। सचमुच भौजी से अच्छी सलाह उसे और कौन दे सकता है?

(७)

सोना गङ्गादीन तिवारी की लड़की है। छोटी अवस्था में ही विधाता ने उसके माथे का सौभाग्य-सिन्दूर, स्लेट पर लिखे गये लेख की तरह लिखने के अनन्तर ही मिटा दिया था। तब से वह अधिकांश मायके में ही पिता के गम्भीर स्नेह के साथ रह रही है। इन दिनों कार्य-वश ससुराल गई थी, लौट कर उसने किशोरी के विवाह-विच्छेद की बात सुनी। सुन कर उसे बहुत बुरा मालूम हुआ। किशोरी के ऊपर उसे बहुत ममता थी। उन दोनों के खेत ही परस्पर मिले हुए न थे, मन भी एक दूसरे के बहुत निकट थे।

उसने कहा—बप्पा, यह तो बहुत बुरी बात है। यदि शोभू का विवाह दूसरी जगह हो गया तो किशोरी को जनम भर के लिए कलंक लग जायगा।

"सो तो है ही, सो तो है ही"—कह कर गङ्गादीन उठ कर बाहर जाने को उद्यत हुए।

सोना बोली—तो तुम दयाराम दादा के पास जाकर उन्हें ऐसा करने से रोक दो।

गङ्गादीन निरुपाय होकर अपनी जगह पर फिर बैठ गये। बोले—रोक तो दूँ बेटी, परन्तु आजकल के लड़के अपने बड़ों-बूढ़ों की बात सुनते कब हैं।

सोना ने पूछा—तुमने उन्हें रोका था बप्पा ?

गङ्गादीन को इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो गया। इस शुद्धाचारिणी लड़की के सामने उनका मन स्नेह-रस से घुल कर कुछ-का-कुछ हो जाता था। इसलिए वे कुछ अन्यथा न कह सके। उन्होंने कहा—नहीं बेटी, मैंने उन्हें नहीं रोका। और मैं रोकता भी तो वे मानते नहीं। जहाँ दूसरी सगाई हो रही है, वह बहुत बड़ा घर है और घर में है अकेली लड़की। लड़की क्या है, लक्ष्मी है। ऐसा सम्बन्ध एक तो मिलता ही बड़े भाग से है; और जब मिल जाता है तब ऐसा कौन है जो उसे अपने आप छोड़ दे।

सोना का मन दयाराम के प्रति और भी क्षुब्ध हो उठा। परन्तु क्षोभ के साथ सन्तोष की एक उज्ज्वल रेखा भी उसे दूसरी ओर से आती दिखाई दी। यह सोच कर उसे प्रसन्नता हुई कि दयाराम किशोरी वाला सम्बन्ध उसकी कुत्सा के कारण नहीं छोड़ रहे हैं, इसमें धन का लोभ ही प्रधान है।

कुछ देर मौन रह कर उसने कहा—तो मैं तनिक पार्वती भौजी के पास हो आऊँ।

गङ्गादीन समझ रहे थे कि उन्हें इसी समय दयाराम के पास जाना पड़ेगा। इसलिए लड़की की इस बात से उन्हें उस अभियुक्त की भाँति आनन्द हुआ, जिसे न्यायालय की बैठक तक ही बैठे रहने का दण्ड सुना कर छुटकारा दे दिया जाता है। अतिरिक्त आल्हाद के साथ वे बोल उठे—हाँ हाँ बेटो, तुम बहू के पास अवश्य हो आओ। इस सम्बन्ध में उन्होंसे कुछ कहना अधिक अच्छा होगा। वे साक्षात् लक्ष्मी हैं !

गङ्गादीन ने मुहँ से तो पार्वती के लिए लक्ष्मी कहा, परन्तु उनका हृदय अपनी लड़की के लिए यह कह रहा था।

किसीको खिलाने-पिलाने में पार्वती को सदैव बहुत सुख मिलता था, परन्तु आज सगाई के लिए आये हुए नाई को खिला-पिला चुकने के अनन्तर उसे बहुत क्लान्ति का अनुभव हुआ। सोने के घर में जाकर नीचे बिछी हुई चटाई पर वह लेटी ही थी, इतने में आँगन में से सुनाई दिया—भौजी, क्या कर रही हो ?

भीतर से पार्वती ने उत्तर दिया—कौन है, सोना बाई ? आई मैं।

कमरे से निकलकर पार्वती ने कहा—बैठो बाई, कब आई ? फिर झुककर उसके पैर छुए और अपने दोनों हाथ

माथे से लगा लिये। सोना ने हँसकर बैठते हुए कहा—अच्छा भौजी, तीर्थ करके आई हो। हाँ, मैं आज ही आई हूँ। तुम अच्छी तरह तो रहीं ?

पार्वती थोड़े में अपना यात्रा-वृत्तान्त सुनाने लगी। मेला की भीड़ का प्रसंग आने पर सोना ने पूछा—अच्छा भौजी, उस भीड़ में तुम खो जातीं तो दादा तुम्हें घर में न घुसने देते ?

पार्वती ने भी अपने स्वामी से कुछ इसी ढंग का प्रश्न किया था। दयाराम का अनुत्तर इस समय उसे फिर खटक गया। कुछ अस्वाभाविक स्वर में उसके मुँह से निकल पड़ा—घुसने ही न देते, और क्या ?

सोना अपने उस प्रश्न के ऊपर बहुत भरोसा किये बैठी थी। पार्वती के उत्तर से वह चिढ़ गई। उसने समझा, मैं इन्हें जैसा समझे थी, ये वैसी भोली नहीं हैं; किशोरी के सम्बन्ध की चर्चा में ये किसी पकड़ में नहीं आना चाहतीं। वह बोली—रहने दो भौजी, मुझे क्या सिखाती हो ? मैं समझे थी, किशोरी का सम्बन्ध तोड़ने में तुम्हारी सलाह न होगी। परन्तु अब मालूम हो गया असल में बात क्या है।

पार्वती का चेहरा पीला पड़ गया। सोना ने फिर कहा—अच्छा भौजी, सच सच कहो; तुमने दादा को यह सम्बन्ध तोड़ने से रोका था ?

पार्वती ने अपराधी की भाँति सिर झुकाए हुए कहा—रोका था।

"हाँ, मैंने भी सुना है कि तुमने रोका था। गाँव में सब कोई कह रहे हैं, तुम तो लक्ष्मी हो। धन के लोभ में पड़ कर तुम किसी दूसरे की हत्या नहीं कर सकतीं।"

इस सम्बन्ध में जब जब पार्वती अपनी प्रशंसा सुनती थी, तब तब उसे ऐसा जान पड़ता था कि उसके स्वामी की कुत्सा की जा रही है। बड़े कष्ट के साथ ही वह अपनी जगह जैसी-की-तैसी बैठी रह सकी। सोना ने कहा—तो तुम दादा को फिर अच्छी तरह रोक दो। भौजी, रुपया-पैसा कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। भगवान् ने तुम्हें भी सब तरह से माना है। एक जगह का बना-बनाया सम्बन्ध तोड़ कर यह जो दूसरी जगह से अकृत का पैसा लाया जायगा, वह घर के घर का सत्यानाश कर देगा। दादा कसाईपन का यह काम कैसे कर रहे हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। भौजी, तुम्हारी बड़ाई तब है, जब तुम इस काम से उन्हें रोक दो। नहीं तो कोई उनके नाम पर—

पार्वती एकाएक उठ कर खड़ी हो गई। क्रोध में भर कर बोली—लो बाई, अब तुम जाओ। तुम्हारे लिए उनका काम कसाईपन का हो या और चाहे जो कुछ; मेरे लिए तो जो वे करते हैं, वही ठीक है। बस, अब इस सम्बन्ध में मैं और

कुछ नहीं कहना चाहती।

सोना अवाक् रह गई। अचानक इस उल्कापात के लिए वह तैयार न थी। पार्वती भी कभी ऐसा कर सकती है, यह उसने स्वप्न में भी न सोचा था। कुछ क्षण स्तब्ध रह कर उसने कहा—मुझे तो पहले ही सन्देह था कि तुम्हारे मन में क्या है। इस तरह बिगड़ती क्यों हो? लो, मैं न आऊँगी अब तुम्हारे यहाँ।

विना कुछ उत्तर दिये झपाटे के साथ कमरे के भीतर जाकर पार्वती ने धड़ाक से किवाड़ बन्द कर लिये।

(८)

दूसरे दिन सबेरे नहा-धोकर पार्वती गृह-देवता की पूजा पर बैठी थी, इतनेमें शोभाराम ने आकर कहा—भौजी, आज मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूँ।

कहकर वह गृह-मन्दिर के चबूतरे के नीचे बैठ गया। पार्वती ने उसकी ओर मुहँ करके पूछा—क्या लल्ला ?

शोभाराम चुपचाप नीचा मुहँ किये बैठा रहा। एकाएक उसकी समझ में न आया कि वह किस प्रकार आगे की बात कहे। वह जिस वातावरण में बड़ा हुआ था उसमें अपने मुहँ से अपने विवाह की चर्चा बड़ों के आगे करने के बराबर दूसरी धृष्टता न समझी जाती थी। अपने हिताहित के इतने बड़े प्रश्न को किसी संकोच के बिना गुरुजनों के हाथ में सौंप देने में उसे भी किसी तरह की हिचकिचाहट न थी। परन्तु इस समय स्थिति ऐसी थी कि स्पष्ट बातचीत के बिना काम भी चलता नहीं दीखता था। कुछ ठहर कर सिर नीचा किये हुए ही उसने कहा—मैं तुम्हारी आज्ञा लेने आया हूँ।

किस सम्बन्ध में कैसी आज्ञा लेने आया है, वह यह बात फिर भी न कह सका। उसकी कठिनाई दूर करने के लिए पार्वती ने पूछा—क्या सगाई-सम्बन्ध के विषय में कोई बात है ?

शोभाराम ने कहा—हाँ, इस विषय में तुम मुझे जो आज्ञा दो, मैं वही करने के लिए तैयार हूँ।

पार्वती को सोना के साथ की गई वह बात याद आ गई, जिसे सुन कर कल वह अस्वाभाविक रूप से बिगड़ उठी थी। उस स्वामि-निन्दा में और इसमें अन्तर इतना ही था कि वह सामने के प्रवेश-द्वार से भीतर घुसी थी और यह पीछे से चोर की तरह सेंध काट कर। परन्तु अपने उस व्यवहार के कारण पीछे से उसे बहुत लज्जा प्रतीत हुई थी। इसलिए इस समय अपने को संयत करने का प्रयत्न करके उसने कहा—तो क्या तुम्हें अपने दादा के ऊपर विश्वास नहीं है ?

यह जान कर शोभाराम को दुःख हुआ कि अपनी बात से उसने भौजी के जी को ठेस पहुँचाई है। लज्जित होकर उसने कहा—नहीं भौजी, मैं दादा के ऊपर विश्वास न करूँगा तो किस पर करूँगा ? परन्तु मैं तुमसे यह इसलिए पूछ रहा हूँ कि भूल तो बड़े बड़े ऋषियों-मुनियों से हो जाती है। यदि दूसरी जगह सम्बन्ध करना अनुचित हो तो अभी बिगड़ा कुछ नहीं है। तुम कहो तो मैं अभी पिरथीपुर के नाई को धक्का देकर निकाल दूँ।

पार्वती ने कहा—राम राम ! ऐसा करना भले आद-मियों का काम नहीं है लल्ला।

शोभाराम ने हँस कर कहा—मैं इतना गँवार नहीं हूँ भौजी, कि ऐसा कर ही बैठूँ। किसीको टरकाना है तो उसके बीस उपाय निकल आ सकते हैं। उसे न खिसकाया, मैं ही कहीं खिसक गया, क्या तब भी वह यहीं अड़ा रहेगा। परन्तु—

"परन्तु क्या ?"

"यही कि इससे दादा को दुःख बहुत होगा। और भौजी, तुम यहाँ के आदमियों को नहीं जानतीं। वे लोग यह कहेंगे कि हम लोग पिरथीपुर वालों की बराबरी के नहीं हैं, इसलिए अपने यहाँ सम्बन्ध करना उन्होंने स्वयं ही उचित नहीं समझा। नाई को तो उन्होंने हाल-चाल लेने के लिए भेजा था। तो हाँ, इस सम्बन्ध में तुम मुझे क्या करने के लिए कहती हो ?"

"इस सम्बन्ध में मैं क्या कह सकती हूँ ? होगा वही जो तुम्हारे दादा कर रहे हैं।"

"नहीं भौजी, तुम जो चाहोगी वही होगा, यह मेरा निश्चय है। हाँ, यहाँ वाली की ऐसी बदनामी फल गई है—"

पार्वती ने एकाएक कठोर पड़ कर कहा—छिः लल्ला ! जिस बात का प्रमाण न हो उसे किसी लड़की के सम्बन्ध में ध्यान में भी न आने देना चाहिए।

एक अकथनीय आनन्द से शोभाराम का सारा शरीर कण्टकित हो गया। किसीकी निर्दोषता में भौजी का इतना अटल विश्वास है! थोड़ी देर तक चुप रहने के अनन्तर उसने कहा—माफ करो भौजी, मुझसे भूल हुई। मैं एक वार दादा की आज्ञा न भी मानूँ, परन्तु तुम्हारी बात नहीं टाल सकता। तुम तो मुझसे साफ साफ कह दो, पिरथीपुर की सगाई होगी या नहीं?

"होगी।"

शोभाराम चकित होकर रह गया। वह भौजी की मनोवृत्ति जानता था और तैयार होकर आया था कि उनकी इच्छा पूरी करने के लिए आज वह दादा की भी परवा न करेगा। पार्वती की आज्ञा से वह समस्या इतनी आसानी से सुलझ गई, फिर भी ऐसे साहसिक कार्य का अवसर हाथ से निकल जाने या और किसी गूढ़ हेतु से उसका हृदय सन्तुष्ट न हो सका। उसे अपने ऊपर क्रोध आया कि निर्लज्ज की तरह अपने पक्ष में इतनी बातें क्यों कह गया। दो शब्दों में तो काम निकलता था, भौजी क्या आज्ञा है? बोला—दादा को तो तुमने दूसरी जगह सगाई करने के लिए रोका था, फिर अब यह कैसी बात है? मैं जो इतनी बातें कह गया, उन पर तुम कुछ विचार न करो। तुम जो आज्ञा दोगी उसे करते हुए मुझे कुछ भी संकोच न होगा। हाँ, तो फिर से कहो भौजी तुम्हारी क्या आज्ञा है?

"लल्ला, इस सम्बन्ध में मेरी आज्ञा की योई आवश्यकता न थी। फिर भी मैं कह तो चुकी हूँ कि तुम्हारे दादा जो कर रहे हैं वही ठीक है। मेरे भरपूर विरोध करने पर भी जब उन्होंने दूसरी जगह बात पक्की कर दी, तब वही होना चाहिए। इससे अधिक और मैं कुछ नहीं जानती।"

"विवाह का मूल्य क्या है, यह मैं नहीं जानता। तुम्हारी आज्ञा है इसीलिए यह विवाह है। तुम जो आज्ञा दो, उसके पालन का बल भगवान मुझे सदैव दिये रहें, मैं यही चाहता हूँ।"—कह कर शोभाराम उठ खड़ा हुआ।

झट-से दूसरी ओर मुँह फेर कर पार्वती पूजा का पञ्चपात्र इधर से उधर रखने लगी। कदाचित् उसकी आँखों में आँसू थे।

सामने आये हुए अनेक झगड़े-झंझटों को पार करके उसी दिन सन्ध्या समय शोभाराम की सगाई का दूसरा वाचन विधि-पूर्वक हो गया।

हरिराम ने कौसल्या के पास जाकर कहा—बैन, किशोरी का सम्बन्ध पक्का करने के लिए नाई को बेहटा भेज दिया जाय या दयाराम से अब भी आशा है ?

कौसल्या ने धीमे स्वर में कहा—जैसा जानों, वैसा करो भैया। परन्तु—

वाक्य में 'परन्तु' अपने पूर्वांश के प्रति विद्रोही होकर आता है; उसका विद्रोह चाहे जितना कोमल हो, है तो विद्रोही। इसलिए उसे बीच से ही काटते हुए हरिराम बोल उठा—इधर तो तुम 'जैसा जानों, वैसा करो' कह रही हो और उधर 'परन्तु' भी लगाती जाती हो। अच्छा, कह डालो, 'परन्तु' क्या ? क्या दयाराम अब शोभू को पिरथीपुर की लड़की भी ब्याह देंगे और तुम्हारे यहाँ भी बारात ले आँयगे ?

कौसल्या की आँखों में आँसू छलक पड़े। उसने कहा—वे बारात अपने यहाँ नहीं लायँगे, इसलिए इसीमें भला है कि तुम अपनी बहन और भानजी का गला घोंट डालो !

इस गाँव में हरिराम अपनी ससुराल में रह रहा है; घर उसका कौसल्या के मायके में है। इसी सम्बन्ध से वह उसे बहन कहता है और यथा-सम्भव तदनुरूप व्यवहार भी करता है। कौसल्या के इन आँसुओं ने उसके वचन की कठोरता हरिराम के निकट न-कुछ कर दी। उसकी बात हँसी में लेते हुए वह बोला—भानजी तो परायी धरोहर है। उसे राजी-खुशी अपने घर चले जाने दो, फिर तुम्हारा गला घोंट डालने में कुछ हर्ज न होगा। क्यों है न ठीक?

इस आत्मीयता के अनन्तर भी कौसल्या ने कुछ नहीं कहा। उत्तर के लिए कुछ ठहर कर हरिराम फिर बोला—हाँ बेंन, तुम और क्या कह रही थी, कुछ कहो तो। क्या इस सम्बन्ध में किशोरी से कुछ पूछने को है? आजकल के लड़के-लड़कियों की बातें कुछ अनोखी हैं, इसीलिए मैंने कहा।

कौसल्या के मन में इस बात की छाया भी न थी। उसने शंकित होकर पूछा—यह कैसी बात है भैया?

हरिराम को सन्तोष हुआ कि उसकी बात ने कौसल्या का मौन तोड़ दिया। उसने कहा—तुमने शोभू की बात नहीं सुनी तो क्या?

शोभाराम का कोई आक्षेप योग्य व्यवहार सुनने की आशंका ने कौसल्या की जिज्ञासा शान्त कर दी। उसने कहा—मैंने कुछ नहीं सुना भैया।

हरिराम बोला—तुम तो जानती ही हो बेंन, कुछ

भी क्यों न हो, पार्वती में फिर भी कुछ दया-मया है। वह नहीं चाहती थी कि एक जगह की सगाई तोड़ कर दूसरी जगह की जाय। शोभू को तुम कुछ कम न समझो; लोभ में वह अपने दादा से इक्कीस ही निकलेगा। काम बिगड़ता देख वह पार्वती के पास गया और उसके पैरों पर सिर रख कर दूसरी जगह बात पक्की करने के लिए जब उसे राजी कर लिया तब उठा। क्यों है न अनोखी बात?

कौसल्या रुलाई के स्वर में बोल उठी—मुझे नहीं सुननी तुम्हारी अनोखी बातें। तुम जो ठीक समझो, करो; मैं कुछ नहीं जानती।

हरिराम ने कहा—सो तुम्हें कुछ जानने की जरूरत क्या है? मैं न होऊँ तब बात भी है। तो हाँ, आज मैं बात पक्की करने के लिए नाई भेज रहा हूँ। ब्याह भी जल्दी करना पड़ेगा।

कौसल्या ने कुछ उत्तर न दिया। हरिराम जानता था कि मौन रह जाना सम्मति का ही लक्षण है। इसलिए इस सम्बन्ध में फिर कुछ कहना-सुनना उसे आवश्यक न जान पड़ा।

कुछ देर बाद वह बोल उठा—अरे किशोरी! कहाँ गई? एक लोटा पानी तो ला बिटिया। प्यास लगी है।

घर की एक कोठरी से उत्तर मिला—लाती हूँ मामा।

किशोरी कोठरी के भीतर से यह बातचीत सुन रही

थी। हरिराम की बात का उत्तर दे चुकने के अनन्तर उसे एक तरह की लज्जा का अनुभव होने लगा। आजकल के लड़के-लड़कियों के ऊपर अभी अभी टिप्पणी की जा रही थी और उसके बाद ही वह अपने विवाह की चर्चा छिप कर सुनते हुए पकड़ ली गई। यदि इस समय किसी प्रकार वह हरिराम की बुलाहट सुन न सकती तो कितना अच्छा होता। परन्तु जब वह सुन ही चुकी तो उसको अनसुनी करने का उपाय ही उसके पास कौन-सा था ?

एक क्षण बाद ही उसने अपनी यह लज्जा प्राण-पण से ठेल कर दूर करने का प्रयत्न किया। उसका मामा पीने के लिए पानी माँग रहा है और वह घर में बैठ कर व्यर्थ की बातें सोच रही है। उसके ऊपर जो अन्याय किया जा रहा है उसका जैसा तीव्र अनुभव उसके इस मामा ने किया है, वैसा और किससे बन पड़ा है ? जिस संसार में शोभाराम तक अपनी भौजी के पैर पकड़ कर उन्हें उसके विरुद्ध अपने षड्यन्त्र में मिला लेता है, उसमें उसके मामा के जैसे व्यक्ति का होना उसे एक ईश्वरीय वैचित्र्य ही जान पड़ने लगा। अभी तक वह शोभाराम के प्रति ही अपने दारुण अभिमान से मन ही मन जल रही थी, अब उसका ध्यान अपनी माँ की ओर भी गया। ऐसे परमात्मीय के प्रति भी वह यथोचित व्यवहार न करके उपेक्षा का-सा भाव दिखा रही है, इससे बढ़ कर अनुचित और क्या हो सकता है ? फिर भी उसके

मामा का ध्यान इस ओर नहीं है, इसके लिए उसका मन कृतज्ञता से भर गया। किसी तरह अपना यह कृतज्ञ भाव यदि उन तक पहुँचा सके। तो मानों वह बच जाय।

लोटा भर कर किशोरी धीरे धीरे हरिराम के पास पहुँची। माँ को मुहँ भारी किये चुपचाप बैठी देख उसके जी को फिर चोट लगी। लोटा हरिराम की ओर बढ़ा कर उसने कहा—हाथ-पैर धोकर मामा, आज यहीं भोजन कर लो। तुम्हें देर हो गई है।

हरिराम ने हँस कर कहा—देर तो कुछ नहीं हुई बेटी, घर जाकर ही खा लूँगा।

यह सब सुन कर भी माँ को मौन ही देख कर किशोरी मानों विद्रोह-पूर्वक जोर दे कर उसे भोजन के लिए खींच ले गई। लड़की के इस अयाचित समादर से हरिराम मन ही मन प्रसन्न हुआ। किशोरी के विवाह के सम्बन्ध में वह जो कुछ कर रहा है, उसका मूल्य वह जानती है, उसके निकट यह छिपा न रह सका।

पार्वती के यहाँ जाने के अनन्तर सोना का जी बहुत दु:खी हो गया। बहुत इच्छा रहने पर भी वह किशोरी के यहाँ तत्काल न जा सकी। माँ-बेटी इन दिनों कैसी दु:खित होंगी, इसकी कल्पना उसे निरन्तर पीड़ा पहुँचाने लगी।

ऐसे ही में किशोरी की दूसरी जगह सगाई हो जाने का सब समाचार एकाएक सुन कर वह वैसी ही रह गई। उसी समय वह किशोरी से मिलने के लिए चल पड़ी।

सोना ने पूछा—काकी कहाँ हैं किशोरी ?

"सो रही है।"

सोना को आश्चर्य हुआ। कौसल्या गरमियों की दोपहरी में भी कदाचित् ही कभी सोती थीं। इसलिए इस शीतकाल में यह दिवा-निद्रा अवश्य ही अस्वास्थ्य-मूलक है। वह बोली—क्या उनकी तबीयत कुछ खराब है ?

किशोरी ने कहा—सो रही हैं, इसलिए इस समय तो कुछ अच्छी ही समझनी चाहिए। नहीं तो, जागती होतीं

रहने से तो उनका बीच बीच में खुलकर रो पड़ना ही अच्छा था।

सोना चुप रह गई। कुछ देर बाद बोली—बेहटा की बात पक्की होगई और मुझे कुछ मालूम ही न हुआ?

किशोरी ने कहा—जीजी, तुम्हें कैसे मालूम होगा? परसों की तो तुम आई हो, फिर भी घड़ी भर का तुम्हें समय नहीं मिला कि यहाँ आतीं। तुम गाँव में ही तो रहती हो; तुमने भी सुन लिया होगा कि अब भले घर की बहू-बेटियों से बात करने योग्य मैं नहीं हूँ।

कहते-कहते किशोरी ने अभिमान से अपना मुहँ फेर लिया। सोना ने तुरन्त दोनों हाथ बढ़ाकर उसे अपने अँकवार में भर लिया। एक हाथ से उसका सिर ऊपर उठा कर उसकी आँखों में अपनी आँखें मिलाते हुए उसने कहा—बेंन, क्या तू मुझे ऐसी नीच समझती है, जो मुहँ से ऐसी बात निकाल रही है?

सोना के अंक में माथा टेककर किशोरी चुपचाप आँसू गिराने लगी। इतने दिन बाद आज उसे रोने का अवकाश मिला है। इसे वह कैसे हाथ से निकल जाने दे? ऐसा नहीं है कि इस बीच में उसे अपनी माँ के सामने दो-एक बार आँसू बहाने न पड़े हों। परन्तु वैसे में बहाने की अपेक्षा रोकने ही उसे अधिक पड़े हैं। उसके जो आँसू हृदय के गभीर तल देश में थे, लज्जा के क्रूर पत्थर ने उन्हें वहीं बन्द

कर रक्खा था। आज इस समय उसके सामने कोई बाधा-बन्धन न था। आज उसे इस बात का भय न था कि हृदय का कोई प्रच्छन्न रहस्य भी इन आँसुओं के साथ निकलकर किसी दूसरे के सामने प्रकट हो पड़ा है। उसने अपने आँसुओं के रोकने का कोई प्रयत्न न किया। उसके साथ साथ सोना का हृदय भी उमड़ पड़ा। आँसू गिराती हुई चुपचाप वह उसके माथे पर अपना एक हाथ फेरने लगी। मानों चुपचाप इस तरह हाथ फेरने के अतिरिक्त कहने को उसके पास और कुछ भी नहीं है।

परन्तु हमारे पास कहने के लिए कुछ न हो, तब भी हमें कुछ-न-कुछ कहना ही पड़ता है। इसलिए आँसुओं के ज्वार में ईश्वरीय विधान के अनुसार जब भाटा आया, तब सोना ने कहा—दुबे भैया ने यह सम्बन्ध इतना जल्द क्यों कर दिया बेन ?

किशोरी ने कहा—न करते जीजी, तो क्या करते ? गाँव वाले जैसी बुरी बुरी बातें फैला रहे हैं, उनसे बचने का उपाय उनके पास और क्या था ?

सोना बोली—परन्तु सुनते हैं, उनके चरित्र में—

किशोरी असहिष्णु होकर बोल उठी—सुनने की बात कुछ न कहो जीजी। सुने हुए का विश्वास करतीं तो तुम आज मेरी छाया भी न छू सकतीं। और, जिनमें तुम गुण ही गुण देखती हो, उनके भीतर भी तो न जानें कैसी

कैसी चालें छिपी रहती हैं। मैं तो इतना जानती हूँ, माँ जिनके हाथ में सौंप देंगीं उनके गुण-दोष का विचार करने वाली मैं नहीं हूँ। एक ओर तो तुम किसीके ऊपर इसलिए बुरी तरह असन्तुष्ट हो कि झूठे अपवाद के कारण उन्होंने हमें ठुकरा दिया है, और दूसरी ओर जिन्होंने नीच कुत्सा के सामने अपना सिर नहीं झुकने दिया, उनमें भी दोष देखती हो! नहीं जीजी, मैं उनमें किसी तरह की अश्रद्धा नहीं रख सकती, इस सम्बन्ध में बस तुम कुछ न कहो।

सोना स्तब्ध रह गई। शोभाराम आदि के प्रति किशोरी का यह कैसा अभिमान है! किसीकी भर्त्सना इस प्रकार भी की जा सकती है, सोना ने आज पहली बार इसका अनुभव किया। हाय, ऐसे रत्न को भी लोग पैरों में ठुकरा दे सकते हैं! अपने बिना जानें एक गहरी साँस लेकर वह जहाँ की तहाँ बैठी रही।

थोड़ी देर बाद उसने कहा—जान पड़ता है, काकी के जी को चैन नहीं है। कहीं उनकी तबीयत खराब न हो जाय।

"यही डर मुझे भी है। पहले तो वे बीच-बीच में कभी रो पड़ती थीं, और अपने भीतर का क्रोध किसी न किसी मिस प्रकट करके दूसरों से बोलती-चालती भी थीं। परन्तु जिस दिन से दुबे मामा ने वहाँ की बात पक्की कर दी है, उस दिन से मानों उनमें कुछ रह ही नहीं गया। अकेले में चुपचाप बैठी रहती हैं, कभी कोई पास बैठने के लिए आता

हैं तो वहाँ से उठ जाते हैं। जो काँटा उन्हें चुभ गया था, बाहर से देखने से तो वह निकल गया जान पड़ता है; परन्तु उसकी नोंक टूटकर भीतर ही रह गई है। न जानें भगवान् क्या करने वाले हैं। जोजी, ऐसे में कभी कभी खबर लेते रहना; तुम भी कहीं भूल न जाना।"

किशोरी को जिस बात की आशंका थी, हुआ भी वही।

रात को खाट पर पड़ी हुई माँ के पास जाकर किशोरी ने कहा—उठो माँ, ब्यालू कर लो।

विकल कण्ठ से कौसल्या ने उत्तर दिया—प्यास लगी है बिन्नो, चल कुछ खा लूँ।

माँ के स्वर से शंकित होकर उसके माथे पर हाथ रखते हुए किशोरी बोल उठी—ऐं तुम्हें तो बड़े जोर का बुखार है माँ! ऐसे में कुछ खाने में हर्ज तो न होगा?

"हर्ज? तो जाने दे। पानी पी लूँ।"

पानी पीने के लिए वह उठकर खाट से नीचे उतरने लगी। किशोरी ने हाथ से रोकते हुए कहा—नीचे मत उतर माँ। ऐसे में खाट पर पानी पी लेने में कुछ बुराई नहीं है।

किशोरी की वह रात बड़ी कठिनता से कटी। सबेरे सबसे पहले पड़ोस के एक वैद्य को बुला लाई। दूर से ही उसे देखकर कौसल्या सहसा प्रसन्नता-पूर्वक बोल उठी—

आओ लल्ला, मैं जानती थी, तुम आओगे।

शंकित होकर किशोरी ने वैद्य की ओर देखा, उन्होंने भी उसकी ओर देखकर उसे शान्त रहने का संकेत किया। परन्तु वैद्य के उस संकेत से ही वह समझ गई कि स्थिति चिन्ताजनक है। माँ के पास आगे बढ़कर उसने जोर से कहा—माँ, ये वैद्य काका हैं; तुम्हें देखने आये हैं।

इस समय तक कदाचित् कौसल्या को अपने भ्रम का पता स्वयं ही लग गया था। कुछ संकुचित होकर एक हाथ से अपने माथे का वस्त्र उसने सँभाल लिया।

नाड़ी देखकर और सब हाल सुनकर वैद्य ने कहा—मैं एक दवा का नाम लिखे देता हूँ। हरू को भेजकर दयाराम के यहाँ से मँगा लेना। मेरे यहाँ यह रस नहीं है। रस के बिना काम न चलेगा।

कौसल्या ने कहा—उनके यहाँ की चीज मैं न खाऊँगी।

वैद्य ने विस्मित होकर कहा—क्यों? लड़की वाला सम्बन्ध तो अब उनके यहाँ है नहीं।

कौसल्या ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ सोचकर वैद्य ने फिर कहा—दाम लेकर तो वे किसी को दवा देते नहीं हैं। अच्छा, मैं दूसरी दवा दूँगा। वह भी ठीक रहेगी।

हवा का बचाव रखने और उबाला हुआ पानी देते

रहने की व्यवस्था करके वैद्य चले गये।

दवा का सेवन तो प्रारम्भ हो गया, परन्तु रोग क्रमशः बढ़ने लगा। सोना किशोरी और हरिराम रात दिन अच्छी तरह लगकर उसकी परिचर्या करने लगे।

एक दिन सोना ने हरिराम से कहा—दुबे भैया, संकट-मोचन महावीर की बड़ी महिमा है। तुम सबेरे वहाँ कोई पाठ कर आया करो और साँझ को हम दोनों दिया धर आया करेंगी।

यह व्यवस्था भी हो गई।

विवाह अभी दूर है, परन्तु उसका पेशखीमा बहुत पहले से घर में आ गया है। काम-काज की इस भीड़ में किसीको अवकाश नहीं है। है तो केवल उसीको, जिसके लिए यह सब हो रहा है। शोभाराम अपना अधिकांश समय खेती के उस बीच की तरह एकान्त में ही बिता रहा है, जिसको लेकर किसान, खेत की मिट्टी और अनुकूल ऋतु के जल-वायु को क्षण भर के लिए भी विराम नहीं होता।

सन्ध्या समय शोभाराम को दिन भर का अपना जीवन बहुत क्लान्तिकर प्रतीत हुआ। उसे जान पड़ा कि जिस मेशीन के बिना इंजन-घर की कोई सार्थकता नहीं, मानों वह तो बन्द पड़ी हो और इंजन धड़-धड़ शब्द करके कान के परदे कोंच रहा है। आज कई दिन बाद हवाखोरी करने के लिए जाये बिना वह रह न सका।

गाँव के बाहर हरे-हरे खेतों में अनेक छोटी छोटी लहरावलियाँ उठाकर वसन्ती वायु क्रीड़ा कर रही थी। चलते चलते हठात् उसके एक छोटे से झोंके ने शोभाराम के अन्त-स्तल में छिपी हुई न जानें कौन-से आनन्द की कली खिला

दी कि उसकी सारी देह एकाएक कण्टकित हो उठी। एक इसी दिन की नहीं, न जानें कब कब और कहाँ कहाँ की अरुचि और ग्लानि मानों एक क्षण में ही बह गई!

इसी उल्लास में वह लौटा चला आ रहा था। कुछ दूर से संकट-मोचन के मन्दिर के सामने, उसने सन्ध्या की धूमिल छाया में दो स्त्रियों को बात करते देखा। कुछ और पास आने पर अपनी गति धीमी करके उसने पहचाना कि सोना और किशोरी हैं। बहुत छोटे में जब किशोरी काठ की पट्टी और मट्टी का बोरका हाथ में लेकर कन्या-पाठशाला में पढ़ने जाया करती थी, शोभाराम तब से उसे देखता आया है। उस समय उसमें कुछ अपूर्वता देखने योग्य उसकी आँखें न थीं। इसके बाद जब दोनों की सगाई हो गई, तब भी कभी कभी वह उसे दिखाई पड़ जाती थी। परन्तु उस समय भी उसमें उसे कोई नवीनता नहीं दीख पड़ती थी। इधर साल दो साल से जब किशोरी से उसका सामना हो जाता था, और जब वह अपने लज्जारुण मुख को दूसरी ओर मोड़कर अपने वस्त्रों में सिमिटती हुई-सी सामने से जल्दी भाग जाती थी, तब अवश्य उसे कुछ कौतूहल होता था। आज पहली बार ही उसने उसके ऊपर एक आग्रह-पूर्ण दृष्टि डाली। किशोरी ने भी इसी समय उसकी ओर देखा। परन्तु उसका ध्यान दूसरी ओर था, इसलिए सम्भवतः वह जान भी न सकी कि उसने क्या देखा। शोभाराम की ओर से

सहज ही अपनी दृष्टि हटाकर वह धीरे धीरे सोना से उसी तरह बात करने लगी, जिस तरह पहले कर रही थी। शोभाराम को यह बहुत बुरा मालूम हुआ। तो भी उसने अपने विना जाने अपनी स्वाभाविक संकोच-शीलता छोड़कर उसके मुख पर एक दृष्टि फिर फेंकी। देखा कि यद्यपि किसी कारण से मुख पर विषाद की घनी छाया छाई हुई है, परन्तु झीने वस्त्र के भीतर से देह की लुनाई की तरह, उसका सहज सौन्दर्य दूना आकर्षक हो गया है। उस समय यदि कोई उसे इस बात का विश्वास दिला सकता कि यह विषाद उसकी सगाई टूट जाने के कारण ही है तो उसके आनन्द की सीमा निर्धारित करनी कठिन हो जाती। परन्तु उसे भासित हुआ कि कुछ दूसरी बात है। उसको जानने के लिए उसका मन न जानें कैसा-कैसा करने लगा। जब उन लोगों के साथ सब तरह का सम्बन्ध विच्छिन्न हो चुका है, तब इस उत्कण्ठा की आवश्यकता ही क्या, यह बात वह स्वयं नहीं समझ सका। मन्दिर के चबूतरे के नीचे पैर के जूते धीरे धीरे उतार कर वह उसके भीतर चला गया।

कुछ देर आपस में बात करके किशोरी चली गई, वह मन्दिर में पहले होगई थी; और सोना मन्दिर के चबूतरे की सीढ़ी पर चढ़ी।

शोभाराम चुपचाप खड़ा कुछ सोच रहा था। आहट पाकर झट से देवमूर्ति के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा।

भीतर आकर सोना ने कुछ रूखे स्वर में कहा—शोभू भैया, देवता में तुम्हारी भक्ति कब से हो गई ? मैं तो बराबर देखती आ रही हूँ कि तुम खट-खट करते हुए यहाँ से निकल जाते हो; भीतर की ओर कभी झाँकते तक नहीं।

शोभाराम क्रुद्ध न हो सका। बोला—क्यों, क्या इसमें कुछ हर्ज हो गया जीजी ?

सोना ने तीखे स्वर में कहा—हर्ज न हो तो भी दो जनों की बात इस तरह लुक-छिप कर सुनना क्या अच्छा है ?

शोभाराम ने भी उसी तरह उत्तर दिया—तुम तो व्यर्थ के लिए झगड़ती हो। क्या तुम किसीको दर्शन करने के लिए मन्दिर में भी न आने दोगी ? मैं तो तुमसे कोई बात नहीं करता।

सोना बोली—मुझसे काहे को करोगे; तुम तो लुक-छिप कर यह सुनोगे कि वाह, हमने दूसरे का सर्वनाश कहाँ तक कर डाला !

"अच्छा यही सही !"—कहकर शोभाराम क्रोध में भरकर मन्दिर के बाहर निकल गया।

पथ पर अकेले चलते-चलते वह थोड़ी देर में ही शान्त हो गया। उसे अनुताप होने लगा कि मैं व्यर्थ ही झगड़ पड़ा; यदि शान्त बना रहता तो कुछ बुरा न होता।

चलते-चलते अचानक उसके ध्यान में आया कि कहीं सोना मेरे घर न पहुच जाय और आज की बात पर रंग

चढ़ाकर वहाँ उसे सबके सामने न प्रकट करने लगे। छिः छिः यह कितनी लज्जा की बात होगी। वह फिर गाँव के बाहर निकलकर खेतों पर इधर उधर घूमने लगा।

दो घंटे बाद उसने धड़कते हृदय से घर के भीतर प्रवेश किया। वहाँ तब भी काम-काज लगा हुआ था। उसे देखकर आदमियों के मुँह पर कोई विशेष भाव-परिवर्तन न हुआ। दयाराम कुछ किसानों से ताजे घी के प्रबन्ध की बातें कर रहे थे। उन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं। यह देखकर उसे सन्तोष हुआ कि सोना के साथ लड़ाई हो जाने का समाचार यहाँ तक नहीं पहुँचा। अब वह भीतर घुसा। परन्तु वहाँ की अपेक्षा उसे बाहर का ही डर अधिक था। विश्व-विद्यालय की ऊँची परीक्षा दे चुकने वाले विद्यार्थी के लिए प्रवेशिका के प्रश्नों में आंशिक रूप से असफल हो जाने पर भी, बहुत बड़ी लज्जा की बात नहीं होती।

इतना हो चुकने पर उसे अपने ऊपर हँसी आई कि मुझे इतना डरने की क्या बात थी। यदि सोना वास्तव में वैसा ही करने के लिए यहाँ आ जाती तो मैं भी तो कुछ कह सकता था। क्या वह किसीको मन्दिर में दर्शन करने तक के लिए न जाने देगी? मैं कल फिर उसी समय मन्दिर जाऊँगा; रोके तो कोई!

पास पहुँचकर उसने पार्वती से इस तरह कहा, मानों वह उन्हें घंटों से पुकार रहा था—भौजी, मुझे तो जोर की

भूख लगी है, तुम सुनती ही नहीं।

पार्वती ने उसकी ओर गर्दन फेरकर विस्मय के साथ स्नेह-स्निग्ध कण्ठ से कहा—लो सुनो, तुमने मुझसे कब कहा था!

शोभाराम ने कहा—मैं स्वयं दौड़ा हुआ न आऊँ तो तुम्हें याद ही काहे को आने लगी।

कहकर उसने लौट जाने के लिए उद्यत होने का भाव दिखाया। पार्वती ने व्यस्त होकर कहा—ठहरो लल्ला, हाथ धोकर मैं अभी आई।

सिर हिलाकर शोभाराम बोल उठा—नहीं, भौजी, हाथ धोने का काम नहीं है, इसी तरह चली आओ। बहुत भूख लगी है।

इस तरह मानों 'शुद्ध कलाकार' की तरह बातें करने के लिए ही बातें करके, थोड़ी देर के लिए वह और कुछ भूलने की चेष्टा करने लगा।

(१२)

उस रात पलंग पर जाकर बड़ी देर तक शोभाराम को नींद न आ सकी। रह रहकर किशोरी का मुख उसकी आँखों के सामने आने लगा। पहले वह उसे देखकर भाग जाती थी; आज मन्दिर के सामने वैसा रूढ़ व्यवहार करके इतनी ढीठ होगई थी कि अपने अधिकृत स्थान से हटने का नाम तक न लेती थी! उसने सोचा, अब जब सगाई टूटकर दूसरी जगह विवाह जैसा ही हो चुका है, तब अन्य किसीके विषय में विचार करना भी बहुत निन्द्य है। अब उसके साथ किसी तरह का सम्बन्ध ही क्या? परन्तु क्या सगाई टूट जाने का ही दुःख उसे था? यह दुःख उसे होगा क्यों नहीं, होना ही चाहिए। कहीं किसी ऐसे-वैसे के घर जा पहुँची तो चक्की पीसते-पीसते मालूम पड़ेगा।

मन्दिर के आगे किशोरी ने आज उसकी ओर दृक्पात तक न किया था, इस बात का प्रतिशोध लेने के लिए उसने ऐसी बात सोची तो परन्तु सोचते-सोचते ही उसके भीतर भूकम्प-सा हो उठा। वह फिर सोचने लगा, हो सकता है,

उस पर और कोई संकट आ पड़ा हो। कुछ दिनों से उसकी ग्रह-दशा अच्छी नहीं है। पहले पिता की मृत्यु, फिर घर में चोरी, और अब यह। विपत्ति का अधिष्ठाता जिस द्वार से घर के भीतर प्रवेश करता है, उसीसे उसके पारिषद्गण भी निरन्तर आते रहते हैं और ये स्वयं उसकी अपेक्षा भी नृशंस हो सकते हैं। अब उसके इस वर्तमान संकट का समाचार उसे मालूम किससे हो? अपने आप मालूम हो जाय तो दूसरी बात, वह स्वयं किसीसे नहीं पूछ सकता। अपनी इस असहायता पर उसका जी भीतर ही भीतर पुटपाक होने लगा।

उसकी खाट से कुछ हटकर नीचे एक दरी पर गठरी-सा बना हुआ बंसा खर्राटे भर रहा था। कुछ सोचकर शोभाराम ने आवाज दी—बंसा, बंसा। परन्तु बंसा के लिए यह इतना भी न था, जितना कुम्भकर्ण के शरीर पर एक सामान्य वानर का चपेटाघात। उसकी पुकार का उत्तर दिया, पास के कमरे से दयाराम ने—क्या है शोभू?

मन-ही-मन लज्जित होकर शोभाराम ने उत्तर दिया—कुछ नहीं दादा।

शोभाराम ने वहीं से फिर कहा—हाँ, वह कुछ नहीं है। मैंने उठ कर देख लिया है, कनस्टरों पर चूहे खड़बड़ कर रहे हैं।

हाय रे, दादा को इस समय भी चोरों की ही सूझ रही है, जिस समय वह दूसरे के संकट की बात सोचते-

सोचते मरा जा रहा है! अभी तक वह वंसा को निद्रा-परायणता को कोस रहा था, इस वार उसे इस जागरूकता पर भी आक्रोश आये बिना न रह सका। ऐसी जागृति से तो निद्रा ही अच्छी!

रात्रि की निस्तब्धता फिर छा गई!

दूसरे दिन किशोरी के सम्बन्ध में कुछ जानने के लिए दिन भर उसका जी छटपटाता रहा। सायंकाल ठीक कल के समय वह फिर घर से बाहर हुआ।

इधर उधर घूम फिर कर जिस समय वह मन्दिर के सामने पहुँचा उस समय न तो वहाँ किशोरी थी और न सोना। उसे धारणा हो गई थी कि वे दोनों प्रति दिन मन्दिर आया करती हैं। इस समय उन्हें वहाँ न देख कर उसका मन उस दारोगा की तरह बिगड़ उठा, जिसे अपने अधिकार-क्षेत्र के गाँव में पहले से समाचार पहुँचा देने पर भी, मुखिया-लम्बरदार स्वागत के लिए खड़े नहीं मिलते। आज उसे अपने लोगों में समय-निष्ठा न होने की बात बहुत खटकी। जो काम करना है, उसे ठीक समय पर ही करना चाहिए; यह क्या कि घण्टे दो घण्टे इधर उधर हो जाने का हमारे सामने कोई मूल्य नहीं!

वह घर लौटने वाला था। सहसा उसके मन में आया कि उसने देव-दर्शन तो किया ही नहीं। झट से मन्दिर के भीतर पहुँच कर उसने देवता को साष्टांग प्रणिपात करके

स्तव-पाठ प्रारम्भ कर दिया।

जान पड़ता है, संकट-मोचन ने उसका स्तोत्र चार आने ही ग्रहण कर पाया। थोड़ी देर के बाद सोना ने द्वार के भीतर पैर रक्खा, किशोरी उसके साथ न थी। परन्तु अर्थ शास्त्र में चार आने का मूल्य भी कम नहीं। शोभाराम की अन्तरात्मा प्रसन्न हो उठी।

देवता के चरणों में मत्था टेक कर सोना जब प्रार्थना कर चुकी तब शोभाराम ने भी अपनी पुण्य-क्रिया समाप्त करके कहा—जीजी, तुम कल व्यर्थ ही अप्रसन्न हो गई थीं। यदि मुझसे कुछ भूल हो जाय तो भी तुम्हें उसका बुरा न मानना चाहिए। फिर कल तो ऐसी कोई बात भी नहीं हुई थी।

कल सोना को भी अनुभव हुआ था कि देवता के सामने मुझे शान्त ही रहना चाहिए था। आज शोभाराम को अकेले में देवता की प्रार्थना करते देख कर वह उस पर कुछ संतुष्ट भी हो गई थी। बोली—तुम लोगों को देखकर आज कल न जानें क्यों मुझे गुस्सा आ जाता है। परन्तु महावीर जानते हैं, कल के व्यवहार के लिए मेरे जी को भी कम क्लेश नहीं हुआ था।

सोना की बात में उसके स्वच्छ हृदय का प्रतिबिम्ब देख कर शोभाराम का मन आनन्द से भर गया। बोला—जीजी, तुम्हारे कहने-सुनने का कुछ बुरा थोड़े है। परन्तु तुम जेठी-बड़ी हो, हमारी पूज्य हो; तुम इस तरह नाराज रहोगी तो

हमारा काम कैसे चलेगा ? तुम्हीं सोचो, जो बात तुम्हारे जी को इतनी खटक गई है, उसमें मैं क्या कर सकता था ?

सोना ने कहा—मैं मानती हूँ तुम कुछ नहीं कर सकते थे, परन्तु तुम्हारी भौजी और दादा तो सब कुछ कर सकते थे। मैं समझती थी, पार्वती भौजी—

शोभाराम ने बात काट कर कहा—भौजी की बात तुम बीच में व्यर्थ ही लाती हो। जीजी, उन्हें उतना तुम न जानती होगी, जितना मैं। कल कोई नई बात हुई होगी, जिसके कारण तुम्हारा जी ठिकाने न था।

शोभाराम की बात में पार्वती की जो प्रशंसा छिपी थी, सोना को वह अच्छी न लगी। फिर भी उसने उसे टाल कर कहा—हो सकता है, कल मेरा जी ठिकाने न हो। कल कौसा कक्की की तबीयत और भी बिगड़ गई थी। रात भर हम कोई सो न सकी थीं।

शोभाराम ने चकित होकर पूछा—क्या वे बीमार हैं ?

"तुम्हें मालूम नहीं, उन्हें तो कई लंघनें हो गई हैं ! होश तो ठीक है ही नहीं, खाँसी और कफ के मारे उन्हें साँस लेना भी कठिन हो गया है।"

"तो सरदी तो नहीं लग गई ?"

सोना ने सूखी हँसी हँस कर कहा—सरदी तो क्या लल्ला, उन्हें बात लग गई है। उनके लिए तो मरन ही में मङ्गल है।

शोभाराम चुप रह गया। एक क्षण बाद कुछ सोच कर बोला—मेरे यहाँ शास्त्रीय रीति से तैयार किया हुआ अभ्रक रस है। ऐसी बीमारी में वह बहुत फायदा पहुँचाता है। तुम कहो तो मैं उसे ला दूँ।

सोना बोली—तुम्हारी दवा वे छुएँगी ?

शोभाराम ने खिन्न होकर कहा—क्यों जीजी, क्या मैं उन्हें दवा के बहाने जहर खिला दूँगा ?

एक मीठी झिड़की देकर सोना बोली—कैसे सिड़ी हो तुम लल्ला ! मैंने जहर देने की बात तो कही नहीं। तुम लोगों ने सब सम्बन्ध तोड़ दिया है, परन्तु वे तो एक बार लड़की का दान तुम्हारे यहाँ कर चुकी हैं; फिर लड़के वाले के यहाँ की कोई चीज किस तरह ग्रहण कर सकती हैं ?

शोभाराम अवाक् रह गया ! लड़के वाले के यहाँ की कोई भी वस्तु न खाने-पीने का नियम उसे बिलकुल नापसन्द था और इस अन्तःसार शून्य भावुकता के विरुद्ध उसने एकाध बार किसीसे वाद-विवाद भी किया था। परन्तु इस समय इस आचार की महत्ता के सामने वह नत-मस्तक हो गया।

सोना को जाने के लिए उद्यत देखकर उसने कहा—परन्तु जब उनकी बीमारी इतनी बढ़ गई है तो ओषधि तो किसी तरह देनी ही चाहिए। तुम कहती हो, उन्हें होश नहीं है। मेरा रस तुम उन्हें दे दो, उन्हें क्या पता चल सकता है कि कहाँ का है।

सोना ने अपनी जीभ काटकर कहा—राम राम ! मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ, मुझे तो उनका भाव मालूम है। और भैया, तुम तुम्हारे दादा और तुम्हारी भौजी तो बहुत बड़े धार्मिक हैं, फिर तुम्हारे मुहँ से ऐसी बात निकली कैसे ? तुम्हारी समझ में ऐसा असत् व्यवहार करने में कुछ बुराई नहीं है !

कहते कहते वह स्वयं रुक गई। मन्दिर में खड़े होकर वह किसीके ऊपर कोई आक्षेप नहीं करना चाहती थी। अपने कहने के स्वर को संशोधित करके उसने फिर कहा—भैया, तुम्हें मालूम नहीं है, वैद्य काका ने तुम्हारे यहाँ से दवा मँगा लेने की बात पहले ही कही थी। कौसा काकी ने उसे खाने से उसी समय इन्कार कर दिया था। उस दिन उन्हें कुछ कुछ होश था। अब बेहोशी में कभी कभी दवा देख कर उसे हाथ से हटाने लगती हैं; कहती है, मैं उनके यहाँ की दवा न खाऊँगी। एक दिन दवा खा चुकने पर बड़ी देर तक रोती रहीं,—तुमने मुझे यह किनके यहाँ की दवा खिला दी ? इस बेहोशी में भी वे तुम्हें नहीं भूलतीं। किसीको आया देख कर कभी कभी कहने लगती हैं—आओ लल्ला, आओ। मैं जानती थी, तुम आओगे। मेरा लड़का तो राजा है; मुझे छोड़ थोड़े सकता था। ऐसी कितनी ही बातें हैं भैया, जिन्हें सुनकर जी उमड़ आता है।

सुन कर शोभाराम की आँखों में आँसू आ गये थे,

परन्तु उसने किसी तरह उन्हें रोक लिया। सोना कहने लगी—बेचारी किशोरी भी बहुत घबरा रही है। और ऐसे में घबरा न जाय तो क्या करे। आजकल उन माँ-बेटी पर भगवान् का कोप है। परन्तु मुझे जान पड़ता है, उन पर जो कोप है सो तो है ही, तुम लोगों के ऊपर उनसे भी अधिक है। किशोरी जैसी लच्छमी लड़की राजाओं के घर में भी दुर्लभ है। वह तुम्हारे घर की बहू बनती तो घर सचमुच स्वर्ग बन जाता। तुच्छ धन के लोभ में, झूठे अपवाद की आड़ लेकर तुमने सजीव लक्ष्मी को ठुकरा दिया है। अब वह जिस गँजेड़ी के हाथ में पड़ रही है, न जानें वहाँ उसका क्या होगा। भगवान् सब कुशल करें, और क्या ?

शोभाराम का चेहरा पीला पड़ गया। सोना चली गई और वह कुछ क्षण तक निर्वाक् और निस्पन्द होकर वहीं खड़ा रहा।

शोभाराम के हृदय में शून्यता-सी छाई हुई थी, इसलिए जब उसने घर लौट कर अपनी बैठक भी शून्य पाई और उसे मालूम हुआ कि दादा गाँव में कहीं बाहर गये हैं, तब उसने इस तरह की साँस ली, मानों उसे किसी आसन्न संकट से छुटकारा मिल गया हो। चुपचाप बैठ कर वह पिछली बातचीत मन-ही-मन दुहराने लगा। सोना ने उससे कहा था कि तुम्हारे ऊपर भगवान् का कोप है, उस समय उसके हृदय की गति क्षण भर के लिए रुक-सी गई थी और उस समय मन्दिर में जो निस्तब्धता थी, उसे देवता की नीरव-सम्मति-सी समझ कर इस समय उसका हृदय पीड़ित होने लगा। भगवान् के इस कोप ने चारों ओर से जकड़ कर जो गोरखधन्धा तैयार कर दिया है, उससे निकलने का मार्ग होगा तो अवश्य, परन्तु उसे प्राप्त कैसे किया जाय, बहुत सोचने पर भी वह समझ न सका। किशोरी की मूर्ति उसके मन में फिर उदित हुई। मन में ही जिसके उदित होने से इतना सुख मिलता है, यदि वास्तव में वह घर में भी अव

तीर्ण हो सकती तो सचमुच ही उसका घर स्वर्ग बन जाता। उसने समझा, यह बात उसके हृदय के मुख पर बहुत पहले से अंकित थी। सोना की बात ने उसके आगे दर्पण-सा रख कर आज उसे चिरन्तन सत्य की भाँति स्पष्ट कर दिया। क्या यह लक्ष्मी-मूर्ति सचमुच किसी नीच के हाथ में पड़ रही है? सहसा उसका मुख कठोर हो गया। यदि ऐसा हुआ तो यह उस पर दुगुना अत्याचार होगा। इस अत्याचार की पुञ्जीभूत लज्जा को वह अपने छोटे-से हृदय में किस जगह छिपा कर रख सकेगा, बार बार यही बात उसके जी में आने लगी।

"भैया तुम यहाँ बैठे हो!"

चौंक कर शोभाराम ने बंसा को देखा। उसे लज्जा मालूम हुई, मानों वह चोरी करते हुए पकड़ लिया गया हो। हाय मनुष्य का मनुष्य के ऊपर इतना उत्पीड़न है कि वह किसीको घड़ी भर अच्छी तरह बैठने भी नहीं देना चाहता! मन के भाव को रोक कर उसने कहा—घूम कर अभी आया था। ब्यालू में तो देर है, भौजी काम में लगी होंगी।

बंसा ने कहा—कक्की को चक्कर आ गया था, इसलिए आज भीतर का काम कुछ पहले ही बन्द हो गया है। मैं दो बार देख गया, मुझे क्या मालूम कि तुम यहाँ अकेले बैठे हो।

शोभाराम हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। गुस्सा में

भर कर बोला—खूब अच्छा हुआ, चक्कर न आयगा तो और क्या होगा! मैं बीस वार कह चुका हूँ कि तुम दुर्बल हो, इतना परिश्रम न किया करो; काम सब हो जायगा, रुका न रहेगा; परन्तु कोई मेरी सुने तब तो। मैं इस विवाह में आज आग लगा दूँगा!

भीतर जाकर पार्वती को स्वाभाविक स्वर में बात करते देख उसका जी ठिकाने आया। उसे आया देख कर पार्वती ने कहा—ब्यालू कर लो लल्ला, बहुत देर हो गई है।

शोभाराम क्षुण्ण भाव से बोला—मुझे भूख नहीं है।

पार्वती के लिए शोभाराम को भूख न लगना ही उसका सबसे बड़ा अपराध था। शंकित होकर बोली—क्या, जी कुछ खराब है?

शोभाराम ने अपने होठों पर हँसी न आने देने का प्रयत्न करते हुए कहा—हाँ, आज मुझे चक्कर आ गया था।

पार्वती को अपनी अस्वस्थ अवस्था में भी हँसते देख कर उसे फिर क्रोध आ गया। फिर भी अपने को संयत करके बोला—नहीं भौजी, हँसने की बात नहीं है। तुम्हें इतना काम करते देख मेरे हाड़ जल जाते हैं। यह तो हो कैसे सकता है कि मैं ब्यालू न करूँ, परन्तु आज मैं तुम्हारे हाथ से परोसा हुआ न खाऊँगा, अन्यथा तुम मानोगी नहीं।

पार्वती ने समझाने के स्वर में कहा—काम तो करना ही पड़ता है लल्ला। स्त्रियों का काम स्त्रियाँ न करेंगी

तो और कौन कर जायगा ?

शोभाराम निर्दय न्यायधीश की तरह कठोर भाव से बोल उठा—बस मैं कह चुका, तुम इतना काम न कर सकोगी। यदि तुम न मानोगी तो हमारी राह अलग, तुम्हारी अलग!

अब तक पार्वती के चेहरे पर एक तरह की रूक्षता छाई हुई थी। दीपक के अस्पष्ट आलोक में शोभाराम उसे लक्ष्य न कर पाया था। उसकी इस बात ने उसे स्नेह के माधुर्य से फिर परिपूर्ण कर दिया। हँस कर बोली—यह तो मैं न होने दूँगी लल्ला।

शोभाराम की झक्की-सी खुली। आज जब उसके विवाह की तैयारी इतने जोर-शोर से हो रही है, तब अलग-अलग राह होने की यह साधारण बात सुनकर दूसरे लोग क्या कहेंगे, यह सोच कर वह स्वयं ही कुण्ठित हो कर रह गया। अपनी असावधानता की रिस उसने पार्वती पर उतारी। झट से बोल उठा—भौजी, साफ क्यों नहीं कह देतीं, आज ब्यालू न दी जायगी? मैं जाकर देखूँ अपना काम।

खा-पी चुकने के अनन्तर शोभाराम ने कहा—मुझे ब्यालू कराने के पीछे तुम्हारे काम का बहुत नुकसान हुआ। अब जाओ; अपना काम देखो। आठ दस बारे गेहूँ रक्खे हैं, उन्हें बीन फटक डालो; और अभी से चक्की पर बैठ जाओ तो सबेरे तक पीस भी डालोगी।

पार्वती ने खिन्न मन से कहा—पीस डालूँगी।

शोभाराम समझता था, भौजी मेरी बात सुन कर हँसेंगी। उनका यह संक्षिप्त उत्तर उसे अच्छा न लगा; उसने ध्यान-पूर्वक पार्वती के मुँह पर अपनी दृष्टि डाली। वहाँ एक अवसादमय खिन्नता देख कर उसका मन पीड़ित हो उठा। उसे यह समझते देर न लगी कि मुझे खिलाने-पिलाने के लिए ही अभी तक भौजी इतनी तत्पर दिखाई दे रही थीं, यद्यपि उनके शरीर ने पहले ही नकार कर रक्खा था। वह तुरन्त ही नरम होकर बोल उठा—सचमुच आज तुम्हारा जी अच्छा नहीं जान पड़ता। चलो भौजी, बैठ कर थोड़ी देर बातचीत करें।

वंसा पास ही खड़ा था। बीच में ही बोल उठा—बातचीत करने से ही तो कक्की को चक्कर आने लगे हैं। तुम उन्हें आराम करने दो भैया।

शोभाराम ने पार्वती की ओर देखा। उन्हें मौन देख कर उसने समझा, अवश्य ही किसी बात ने भौजी का मन आच्छन्न कर रक्खा है। शंका से उसका जी बेचैन हो उठा। भीतर कमरे में जाकर बैठ जाने पर भी थोड़ी देर तक वह कोई बात नहीं चला सका। कुछ इधर उधर करके उसने कहा—तो अब चलूँ ही, तुम्हें आराम करना चाहिए।

पार्वती ने कहा—अच्छी बात है, तुम भी आराम करो।

शोभाराम सहसा भड़क कर वहाँ इस प्रकार जम कर बैठ गया, मानों कोई उसे अपने अधिकार-प्राप्त स्थान से जोर लगा कर हटाने का प्रयत्न कर रहा हो। बोला—जब तुम ऐसा कह रही हो, तो अब मैं न उठूँगा। आज ऐसा क्या हुआ जिससे तुम्हारा जी खराब हो गया, यह तुम्हें बताना ही पड़ेगा।

पार्वती ने क्षीण हँसी हँस कर कहा—बैठो लल्ला, मेरा मतलब यह न था कि तुम्हारा जी न चाहे तो भी तुम चले जाओ।

शोभाराम बोला—भौजी आज मैं बातों में न भूलूँगा। क्या मैं जानता नहीं हूँ कि तुम आजकल कुछ दुखी रहती हो। और इसी कारण तुम शरीर ठीक न होने पर भी सबेरे से लेकर डेढ़-दो पहर रात तक अपने को काम-काज में लपेटे रहती हो। फोड़े के ऊपर कपड़ा डाल कर उसे छिपा लेने से तुम समझती हो कि वह अच्छा हो गया! यदि इस विवाह से तुम्हें सुख नहीं मिल रहा है तो तुमने मुझसे पहले क्यों न कह दिया, तुमने जी की बात छिपाई क्यों? तुम्हारी बात मैं दुलख देता तो भगवान मुझे—

सहसा आँसुओं के बोझ से उसका गला भारी हो गया। पार्वती ने शान्त स्वर में कहा—छिः लल्ला, यह क्या करते हो! जितनी बुरी तुम समझते हो, उतनी बुरी मेरी तबीयत नहीं है। यह विवाह सम्बन्ध तो मेरी सम्मति से

ही तुमने स्वीकार किया है, तुम शंका न करो।

शोभाराम ने पार्वती के मुख पर अपनी दृष्टि जमा कर अविश्वास के भाव से कहा—तो फिर आज तुम्हें यह चक्कर क्यों आ गया था ?

पार्वती ने कहा—विना कारण के तो कोई बात नहीं होती। मेरा मन दुर्बल है, यदि किसीके कष्ट की बात सुन कर वह दुखी हो जाता है तो मैं क्या करूँ ? तिवारी काका आज एकादशी का फलाहार और दक्षिणा लेने आये थे। उनसे मालूम हुआ कि कौसा कक्को बहुत बीमार हैं।

शोभाराम ने रुद्ध कण्ठ से कहा—सोना जीजी ने उनकी बीमारी का सब हाल मुझे भी सुनाया है। परन्तु अब इसके लिए क्या किया जाय भौजी ?

"लल्ला, दुःख तो वहीं सबसे अधिक जाकर लगता है, जहाँ आदमी कुछ कर नहीं सकता। उनके घर में कोई पुरुष-मानुष तो है नहीं, उनके पुरोहित दुबे ही कर्त्ता-धर्त्ता हैं। उन्होंने जोड़-तोड़ मिला कर किशोरी का सम्बन्ध दूसरी जगह करा दिया है। उसी दिन से वे खाट पर गिर रही हैं। जिसके साथ सगाई हुई है, सुनते हैं, ऐसा कोई दुर्गुण नहीं, जो उसमें न हो। थोड़े दिनों में ही उसने अपना हजारों का धन स्वाहा कर दिया है। कुछ हो पुरुष-मानुष लड़की को घर बिठा कर तो रख नहीं सकते। हाय बेचारी !"

शोभाराम सहसा घबरा कर चिल्ला उठा—यह क्या,

यह क्या, तुम्हें चक्कर आ रहा है क्या ? उठ कर उसने झट से हाथ का सहारा देकर पार्वती को सँभाल लिया। एक क्षण में ही सँभल कर वह अपनी कमजोरी के लिए लज्जित हो कर चुप रह गई। शोभाराम का मुहँ सूख गया। बोला—तुम इतना दुःख करोगी तो कैसे काम चलेगा भौजी ?

पार्वती ने कहा—भगवान् ने यह दुःख करना भी मनुष्य के हाथ में न दिया होता तो वह घड़ी भर भी न बच सकता। कौसा कक्को जब इतना बड़ा आघात सह सकती हैं तब मैं भी सह लूँगी। मैंने जो कुछ किया है, उसमें कोई पाप न था, हे भगवान् मेरा यह विश्वास अटूट बना रहे !

मनुष्य अपनी अन्त:पोड़ा का जो धन पल भर के लिए भी अपनी छाती के नोचे नहीं उतारना चाहता, उसको भो उसे क्षुधा और निद्रा की गोद में सौंप देना पड़ता है; और जब वह उसको फिर से सहेजता है, तब उसे इस बात का पता भी नहीं लगने पाता कि उसकी उस धरोहर में से कितना क्या निकल गया है। विधाता का ऐसा ही विधान है, इसे लाँघ कर जाना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है। विवाह के काम काज की भीड़ में पार्वती के जी का वह दुःख भी विलुप्त-सा हो गया। आश्विन मास में बरसने वाले मेघों की तरह यद्यपि अब भी कभी-कभी वह उसके हृदय को आच्छन्न कर लेता है, परन्तु समय की प्रतिकूलता उसे वहाँ अधिक देर तक नहीं टिकने देती। शोभाराम को यह देख कर बहुत सन्तोष होता है। उन्हें अधिक परिश्रम करने के लिए मना करना भी अब उसने छोड़ दिया है। परन्तु वह स्वयं क्या करे, यह उसकी समझ में नहीं आता। बीच बीच में भौजी के पास बैठ कर उनके काम में हाथ बँटाने की

इच्छा करता है, फिर भी अड़ौस-पड़ौस की स्त्रियों की प्रच्छन्न हँसी और आलोचना के डर से कुछ नहीं करने पाता। अपनी इस खिन्नता को दूर करने के लिए वह कोई न कोई बहाना निकाल कर भौजी के पास जा पहुँचता और तरह तरह की बातें करके थोड़ी देर के लिए उनके भार को हलका कर देता। जैसे—जाकर एकाएक कह उठता,—भौजी, आज मैंने एक ऐसी तरकीब खोज निकाली है कि तुम्हारा आधा काम इसी दम पूरा हो जाय। लो, बढ़ाओ इनाम।

भौजी उत्सुकता प्रकट करके पूछती—पहले बात तो बताओ।

शोभाराम गम्भीर होकर उत्तर देता—तुम इतना आटा पिसा पिसा कर बोरों में भर रही हो, इसकी आवश्यकता नहीं। अपने कुएँ में गड़बड़ करके सब आटा, शक्कर और घी डाल दिया जाय और ऊपर एक कोने में गाड़ी भर लकड़ियाँ जला दी जायँ; बस बढ़िया मोहन भोग तैयार हो जायगा। क्यों है न बहुत अच्छी तरकीब ?

पार्वती की सहयोगिनियों की हँसी का मृदु गुञ्जन वहाँ तुरन्त ही फैल जाता। शोभाराम पहले से भी गम्भीर होने की चेष्टा करता हुआ कहता—हाँ, अपने लिए इसमें एक दिक्कत हो सकती है। पीने के लिए पानी कहाँ से आयगा यह मैंने सोचा न था। अच्छा मैं दूसरी तरकीब बताता हूँ—

इस पर सुनने वालियों में से कोई हास-सम्बन्धिनी

कहती—लला, दो दिन बाद ही घर में बहू आने वाली है, उसके सामने ऐसी बातें न कह बैठना। नहीं तो वह कहेगी,—माँ-बाप ने कैसे के पल्ले बाँध दिया।

शोभाराम को बहू-सम्बन्धी चर्चा की लज्जा छोड़ कर कहना ही पड़ता कि तुम्हारे और उसके बाँधने के लिए मैंने दो खूँटियाँ तैयार करा रक्खी हैं। चारा-भूसा तो बहुत है, उसके लिए चिन्ता न करनी पड़ेगी।

फिर एक बार हँसी की धूम पड़ जाती।

कुछ दिनों से पार्वती को शोभाराम के मुख-भाव और एकान्त वास से एक नई चिन्ता और आशंका हो गई थी। उसे इस प्रकार हँसते-खेलते देख कर वह अपनी प्रकृति और तत्कालीन आवश्यकता से भी अधिक आल्हाद प्रकट करती। परन्तु इस बात का ज्ञान तो अन्तर्यामी को ही हो सकता है कि दोनों के हृद्गत भाव दोनों ने किस अंश तक ठीक ग्रहण कर पाये थे।

भौजी को इस प्रकार हँसा कर शोभाराम एकान्त में चला जाता। वहाँ एक बार अच्छी तरह रोने की उसकी इच्छा होती। जिस विश्वासिनी ने अपने दुलार की एकमात्र प्रतिमा को उसके हाथों में सौंपने का संकल्प कर के उसे अपने औरस से भी बढ़ कर अपना लिया था, उसी की गोद में उसने भरपूर जोर की एक लात लगा दी है और वह ममतामयी उसकी उस पद-छाप को अब तक अपनी छाती से

लगाये बैठी है !" उसके ऐसे व्यक्ति के लिए भी किसीके मन में ऐसा दृढ़ विश्वास और प्रबल आग्रह हो सकता है, यह सोच कर उसके शरीर की रोम-राजि हर्ष से उठ खड़ी होती। इसके बाद ही वह अपने रोम रोम में काँटों के चुभने की वेदना का अनुभव करता। कई दिन तक वह उस ओर के नये समाचार सुनने की इच्छा ही न कर सका। उसके जी में एक तरह का खुटका-सा लगा रहता कि न जाने अब कौन-सी नई बात सुनने में आवे।

उस दिन दयाराम ने उससे कहा कि निकट के सम्बन्धियों के यहाँ अपने विवाह का निमन्त्रण और हल्दी की गाँठें देने के लिए उसे बैलगाड़ी से जाना पड़ेगा; तब उसने मन में सोचा—चलो, यह अच्छा ही है। कुछ दिनों के लिए उसे एकान्त में स्वच्छन्दता से रहने का अवसर मिलेगा। जाने के लिए अपने कपड़े-लत्ते ठीक से रखते हुए उसने वंसा से कहा—क्यों रे, तू कभी उनके—कौसा कक्की के—घर की ओर जाता है?

वंसा ने नाक सिकोड़ कर कहा—वे तो अपनी दुश्मन हैं! उन्होंने अपनी बड़ी बदनामी फैला रक्खी है। कल मैं उस ओर गया तो था, परन्तु मैं उनके यहाँ नहीं जाता।

"नहीं, मैं पूछ रहा हूँ, तूने रास्ते से उनका घर तो देखा होगा?"

"देखा क्यों नहीं है, दरवाजे पर बन्दनवार लग गया है। उनके यहाँ इसी सोमवार को बारात आ रही है न; इसीसे। चबूतरे के नीचे जूठी पत्तलों पर कुत्ते आपस में लड़ रहे थे।"

"और कौसा कक्की और, और किसीको नहीं देखा ?"

"हाँ, भीतर पौर में खाट के नीचे बैठी कौसा कक्की कुछ खा रही थीं और किशोरी थाली लिये कुछ परोस रही थी।"

"तुझे उनकी तबीयत कैसी जान पड़ी ?"

"अच्छी थी, और क्या। माँ-बेटी दोनों हँस कर आपस में कुछ कह-सुन रही थीं।"

शोभाराम का मुँह एकाएक गम्भीर हो गया। कौसल्या बीमारी की खाट पर से उठ आई और घर में फिर पहले की तरह हँसने-बोलने लगी है, यह बात उसके जी को न जाने कैसी लगने लगी। वह तो कई दिन से उसकी एक दूसरी ही विषाद खिन्न मूर्ति अपने मन में अंकित किये बैठा था। वंसा की बात की एक चोट से वह तनिक में ही खण्डित हो गई। कौसल्या की वह व्यथा, जिसके कारण वह खाट पर पड़ गई थी, उसके कल्पना-जगत् की एक अनमोल वस्तु बन गई थी। उसने सोचा था कि उसे वह आजीवन अपनी छाती से लगाये रहेगा। परन्तु जहाँ से उसका उद्गम था वहाँ उसकी धारा इतने जल्द सूख गई और सब फिर यथा-पूर्व हो गया। क्या मनुष्य का जीवन इतना ही निस्सार और नीरस है ?

शोभाराम को कभी कभी कौसल्या की ओर झुकते देख वंसा को जलन होती थी। उन लोगों की चर्चा से इस समय शोभाराम को कुछ खिन्न देख कर उसका उत्साह बढ़ गया। बोला—भैया तुम उदास मत हो। कौंसा कक्की खाने-पीने लगी हैं, परन्तु उनको ऐसा जमाई मिला है कि उसका भूत जैसा चेहरा और हड्डा हड्डी शरीर देख कर उनके प्रान-पखेरू फट-से न उड़ जायँ तो कहना। उन्होंने हमारी कक्की की जैसी बुराई फैलाई है, उसका मजा तो चख लें! एक दिन कक्की कह रही थीं कि भगवान् सबका विचार करते हैं, सो मुझे बिलकुल ठीक जान पड़ता है।

किशोरी के वर का रूप उसने जिन शब्दों में वर्णन किया, उनसे शोभाराम का हृदय पीड़ित हो उठा। उसको इस बात की भी सुध न रही कि वह वंसा को उसकी इन अनर्गल बातों के लिए डाँट दे। एकाएक वह सुन्न-सा पड़ गया। वंसा उसके मौन से और भी उत्साहित होकर कहने लगा—मैं सच कहता हूँ भैया, अगर उस भूत को रात में कहीं अकेले में देखो तो तुम भी डर जाओ। चार पाँच दिन हुए, वह बाजार में किसी काम से आया था। देख कर लड़कों का एक हुजूम उसके पीछे पड़ गया। गाड़ी में चुपके से बैठ कर जब तक वह चम्पत नहीं हो गया, लड़कों ने उसका पिण्ड नहीं छोड़ा।

शोभाराम ने भारी गले से पूछा—तूने देखा था उसे?

वंसा ने कुछ आगे की ओर खिसक कर कहा—देखा नहीं तो कहता कैसे ? बुड्ढा साथ था, तुम उससे पूछ न लो। भैया, तुम मुझे भी कम चालाक न समझो। मैं सब ओर नजर रखता हूँ।

शोभाराम को अपनी बात के समर्थन में हाँ या ना कुछ करते न देख वह उदास पड़ गया। बोला—तो अब मैं जाऊँ।

शोभाराम उसे रोकने के लिए अपनी पहली बात की ही पुनरावृत्ति कर बैठा—तूने उसे देखा है ?

वंसा उत्साह के साथ कहने लगा—देखा है, तब तो कहता हूँ। भैया, तुम तो बाहर जा रहे हो, सोमवार तक लौट न सकोगे। नहीं तो उस दिन देखते, दूल्हा ऐसा होता है !

शोभाराम चुपचाप सुनता रहा। वह फिर कहने लगा—ऐसे आदमी को विवाह नहीं करना चाहिए, इसमें पाप पड़ता है। लोग कहते है कि वह दुबेवाला बड़ा कसाई है, उसने लड़के वाले से कुछ रुपये ऐंठ लिये है। नहीं तो कोई किसी लड़की का गला इस तरह घोंट सकता है ? अपने को करना क्या है, परन्तु उसकी बारात यहाँ से भगा दी जाय तो बड़ा मजा हो।

"उसे भगा दिया जाय !" कहकर शोभाराम एकाएक चुप रह गया। दूसरे के सामने एक व्यर्थ सी बात मुँह से

निकल जाने के कारण वह मन-ही-मन लज्जित हो उठा। बंसा बोला—हाँ हाँ भैया, ऐसा हो सकता है। कौंसा भी एक बार फिर चक्कर में फँस जायँ तब तो कुछ मज़ा हो।

"अच्छा अच्छा सब सुन लिया। जा, वह ट्रंक उठा ला।"

उसी दिन बैलगाड़ी लेकर शोभाराम बाहर चला गया।

सम्बन्धियों के यहाँ निमन्त्रण देकर शोभाराम .... जल्द वापस लौट आया कि सबको आश्चर्य हुआ। घर में उस समय बड़ी चहल-पहल मची हुई थी। अगले दूसरे दिन उसके यहाँ भोज था। हलवाई पसीने से डूबे हुए उसीकी तैयारी में व्यस्त थे। मजदूर ईंधन लकड़ी और खाद्य-सामग्री इधर से उधर उठा-धर रहे थे। इसके-उसके प्रश्नों का उत्तर देता हुआ वह भीतर जा पहुँचा। पार्वती एक कोठरी के भीतर मिठाई सिलसिले से रखवा रही थी। चौक में दृष्टि डाल कर सहसा वहाँ से बोल उठी—अच्छा लल्ला तुम हो; आ गये!

शोभाराम उसके पास पहुँच कर बोला—हाँ आ गया भौजी। उसने कोई हँसी की बात कहनी चाही, परन्तु न कह सका। उसके चेहरे पर क्लान्ति के चिन्ह देख कर पार्वती बोली—तुम बहुत थके जान पड़ते हो, आओ जरा यहाँ पीढ़े पर बैठो।

"बैठ बहुत लिया है; गाड़ी में बैठे बैठे शरीर की नस नस ढीली पड़ गई है। दादा ने मुझे बाहर भेज कर न

जानें मेरे किस पाप का दण्ड दिया है। मैं तो तंग आ गया। भूख ऐसी लगी है, मानों यहाँ से जाने के दिन से कुछ खाया ही न हो। मुझे तो ऐसा लगा कि सब निमन्त्रण नदी के हवाले करके सीधा घर लौट जाऊँ।"

किसी तरह कुछ खा-पी कर वह बैठक में जा बैठा। दयाराम सामने लालटेन रख कर कुछ लिख रहे थे। लिखा हुआ कागज मोड़ कर शोभाराम के हाथ में देते हुए उन्होंने कहा—बुद्धा आज बड़े तड़के गाँव जा रहा है। हरलाल माते को देने के लिए यह चिट्ठी उसे दे देना। काम-काज में, उसे देने की याद कहीं मुझे न रहे।

शोभाराम ने कागज की मोड़ खोलकर देखा कि उसकी सगाई के दिन जैसा ताजा घी हरलाल ने भिजवाया था, वैसा ही सात-आठ टीन और भिजवा देने के लिए यह पत्र लिखा गया है।

शोभाराम ने कुछ संकोच के साथ कागज लौटाते हुए कहा—दादा, इसमें सगाई शब्द दुबारा लिख गया है। ठीक कर दीजिए।

पास रक्खी हुई कलम से चिट्ठी ठीक करके उन्होंने फिर शोभाराम के हाथ में दे दी और काम देखने के लिए हलवाइयों के पास चले गये।

पत्र हाथ में लेकर शोभाराम वहाँ निर्वाक् होकर बैठा रह गया। दादा ने भूल से कागज पर दो बार सगाई शब्द

लिख दिया और काटा है, दुबारा का लिखा हुआ। नियम भी ऐसा ही है, परन्तु यथार्थ जीवन में ऐसा हुआ क्यों नहीं? एक तो वास्तव जीवन में ऐसी भूल होनी ही न चाहिये थी और हो ही गई थी तो इस कागज पर दुबारा लिखे गये शब्द की तरह उन्होंने दूसरी सगाई पर ही कलम क्यों न फेरी? अरे विधाता का यह कोप कैसा है कि मेरे जीवन में एक के बदले दो-दो भूलें हो गईं! उसने वह कागज मोड़ कर बड़े यत्न से अपने कुरते की जेब में रख लिया।

शोभाराम कब तक चुपचाप वहीं बैठा रहा, यह उसे मालूम न हो सका। बाहर कुछ शोर-गुल सुन कर सहसा उसकी मोह-निद्रा दूर हुई। एक धक्का-सा खाकर वह झट-से उठ खड़ा हुआ। बाहर जाकर देखा, हलवाई-घर का काम छोड़ कर दौड़े आये आदमियों की भीड़ के बीच वंसा को उसके दादा के सामने करते हुए हरिराम क्रुद्ध होकर कह रहे हैं—हुआ क्या, यह हमसे क्या पूछते हो? अपने इस मुख्तार से पूछो, जिसे सिखा-पढ़ा कर भेजा था।

शोभाराम ने भीड़ के पास पहुँच कर धीरे से एक आदमी से पूछा, बात क्या है? इस पर उसने कहा—कौसल्या के यहाँ जो बारात आई थी, उसमें के कुछ आदमियों से वंसा, किशोरी के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बुरी बातें कह आया है कि विवाह किये विना ही एक के पीछे एक एक करके सब बारात लौट गई है।

उधर वंसा को थप्पड़ मारते हुए दयाराम ने कहा—बोल भट्ठियों का फाजिल कोयला बुझा कर रखते जाने का काम तुझे सहेजा था, फिर तू हमसे पूछे बिना यहाँ से कहीं गया क्यों ?

वंसा ने रोते-रोते अस्पष्ट स्वर में जो कुछ कहा, वह किसीकी समझ में न आ सका। दयाराम को उसे फिर पीटते देख कर भीड़ में से किसीने आगे बढ़ कर बीच-बचाव करते हुए कहा—कहता क्यों नहीं बिना पूछे तू गया क्यों ?

रोते रोते उसने कहा—शोभू भैया ने कहा था।

दोनों हाथ वंसा की ओर बढ़ा कर, उसे निर्देश करते हुए हरिराम ने चिल्ला कर कहा—शोभू को चाहिए था कि इसके हाथ में एक छुरी और दे देता, तभी उसके मन की सोलहों आने पूरी होती। पहले कोई मेरी बात नहीं मानता था, अब तो सुन लिया सबने।

दयाराम एक दम सुस्त पड़ गये। शोभाराम जोर से बोल उठा—झूठ ! बिलकुल झूठ !

एक दूसरे आदमी ने कहा—शोभू तो यहाँ तीन-चार बजे के लगभग कई दिन बाद आये और वंसा का पता तो यहाँ दोपहर से ही नहीं है।

अनेक प्रश्नों के अनन्तर बड़ी कठिनता से लोगों ने समझ पाया कि जब शोभाराम बाहर जाने के लिए सामान लगा रहा था, तब उसने वंसा से ऐसी बात कही थी। इन

सब प्रश्नोत्तरों के मारे कुछ देर के लिए वहाँ ऐसी गड़बड़ मची कि कोई किसीको बात समझ न सका।

अन्त में जाते हुए हरिराम ने कहा—नीचता का बदला न लिया तो मेरा नाम हरिराम नहीं।

हरिराम के जाने के बाद दयाराम भी चुपचाप धीरे से अपने कमरे में चले गये। थोड़ी देर में ही काम-काज के घर में ऐसा सन्नाटा छा गया, मानों यहाँ कुछ हो ही न रहा हो।

इस सन्नाटे में शोभाराम को ऐसा जान पड़ने लगा कि अभी तक यहाँ जो हो-हल्ला और आघात-प्रतिघात चल रहा था, वह कहीं चला नहीं गया; उसीके हृदय में प्रवेश करके उसे पीड़ित कर रहा है।

आधी रात के लगभग अपने कमरे के बाहर निकल कर शोभाराम ने दादा के कमरे में झाँक कर देखा कि हरिराम के चले जाने के बाद जिस तरह जाकर वे पड़ रहे थे, अब भी अपनी खाट पर चुपचाप वैसे ही पड़े हुए हैं।

हलवाई-घर में काम-काज लगा हुआ है, परन्तु अनावश्यक शोर-गुल बन्द है। मानों लोग किसी बीमार के लिए पथ्य प्रस्तुत कर रहे हों। इधर-उधर की दृष्टि बचा कर वह झट-से घर के बाहर निकल गया।

हरिराम, सोना और किशोरी के उपचार से अथवा आयु शेष होने के कारण कौसल्या के प्राण तो उस वार बच गये, परन्तु प्राण जैसी ह कोई दूसरी वस्तु लेकर वह बीमारी गई।

तथापि किशोरी के विवाह की तिथि बहुत निकट थी; इसलिए किसी तरह उसका प्रबन्ध अकेले हरिराम को ही करना पड़ा।

बारात आने के दिन कन्या-दान करने के लिए कौसल्या को व्रत रखना आवश्यक था। हरिराम ने उससे कहा— न हो बेंन, तुम फलाहार कर लो। लग्न रात के समय है, तब तक तुम भूखी न रह सकोगी।—कौसल्या ने किसी प्रकार के विरोध के विना उसकी बात मान ली।

सन्ध्या समय किसी पूजन-विधि को पूरा करने के लिए स्त्रियों में कौसल्या के स्नान करने की बात उठी। इस पर वह स्नान करने के लिए भी चुपचाप उठ कर जा बैठी।

किशोरी एक घर में अकेली बैठी यह सब देख-सुन

रही थी। सोना को बुला कर रोती हुई कह उठी—जीजी, तुमने माँ को रोका क्यों नहीं, आजकल रात का नहाना सह सकने योग्य उनका शरीर है क्या ?

प्यार से उसकी आँखें पोंछ कर सोना ने कहा—बेंन, रो मत। धर्म के लिए जो कष्ट उठाया जाता है, उसका परिणाम बुरा कभी नहीं होता।

ऐसे में ही बारात लौट जाने का समाचार भीतर पहुँचा। समागत स्त्री-पुरुषों की कुछ हूल-गड़बड़ के बाद थोड़ी देर में ही घर में शान्ति छा गई। प्रलाप के अनन्तर श्रान्त रोगी को जिस तरह की शान्ति आ जाती है, ठीक उसी तरह की।

इस घटना के बाद भी कौसल्या प्रति दिन की तरह चुपचाप जा कर खाट पर लेट रही।

सोना ने अनुभव किया कि इस घटना से उसे जितना रोष या क्षोभ होना चाहिए था, वह न हुआ। फिर भी इस रात वह किशोरी को अकेली न छोड़ना चाहती थी। परन्तु इस गड़बड़ी में वह अपने बप्पा को ब्यालू कराने नहीं जा सकी थी। इसलिए आधी रात के लगभग उसे अपने घर जाना ही पड़ा।

गङ्गादीन को ब्यालू कराते समय उसने सुना कि किवाड़ खोलने के लिए बाहर से कोई आवाज लगा रहा है। दरवाजे के पास पहुँच कर भीतर से उसने पूछा—कौन है ?

बाहर से उत्तर आया—मैं हूँ शोभाराम।

दूसरे ही क्षण खटाक से किवाड़ खुल गये और शोभाराम ने घर के भीतर प्रवेश किया। प्रकाश में उसका चेहरा देख कर सोना ने विस्मय के साथ कहा—इतनी रात को शोभू भैया, कैसे? और तुम्हारी तबीयत भी कैसी हो रही है?

शोभाराम ने कहा—जीजी, उस दिन मन्दिर में तुमने कहा था कि कौसा कक्की मेरे लिए कहती हैं,—'मुझे विश्वास था, तुम आओगे' सो आज मैं आ गया हूँ।

सोना के सारे शरीर में आनन्द की बिजली-सी खेल गई। उसके जी में भी आज एक बार ऐसी ही बात उठी थी, परन्तु उस समय असम्भव समझ कर उसने उस पर ध्यान नहीं दिया था। यह तो वही असम्भव सम्भव के रूप में आ खड़ा हुआ है! उसने उल्लास-पूर्वक पूछा—क्या उनके यहाँ विवाह-मण्डप के नीचे बैठने के लिए तैयार होकर?

"हाँ, यदि तुम्हारी और तुम्हारे बप्पा की आज्ञा हो। मैं घर से छिप कर आया हूँ।"

बातचीत का आभास पाकर भीतर से गङ्गादीन ने विस्मय के साथ पूछा—कौन है बेटी? शोभू की-सी आवाज जान पड़ती है।

भीतर से किवाड़ बन्द करके साँकल लगाते हुए

सोना ने कहा—हाँ बप्पा।

भीतर जाकर उसने कहा—बप्पा, शोभू भैया किशोरी का पाणिग्रहण करने के लिए तैयार होकर आये हैं।

शोभाराम सोना के पीछे ही था। उसे प्रणाम करते देख आशीर्वाद देते हुए गङ्गादीन ने कहा—प्रसन्न रहो! तुमने बहुत अच्छा विचार किया भैया। किशोरी लड़की नहीं, लक्ष्मी है। तुमने बहुत अच्छी बात सोची।

सोना बोली—बहुत अच्छी बात सोची तो है, परन्तु बप्पा, यह विवाह तुम्हींको कराना पड़ेगा। शोभू भैया घर से छिप कर आये हैं।

गङ्गादीन ने यह न सोचा था कि सारा उत्तरदायित्व उन्हींके सिर आ पड़ेगा। उन्हें चुप देखकर, सोना ने फिर कहा—नहीं बप्पा, तुम्हें छोड़ कर दूसरा कोई यह विवाह नहीं करा सकता। तुम्हींको सारी विधि पूरी करनी पड़ेगी, यह मैंने कह दिया।

सोना के स्नेह-शासन से निकल जाने की शक्ति गङ्गादीन में न थी। निरुपाय होकर उन्होंने कहा—अच्छा बेटी, यही सही।

अब सोना ने अपना स्वर कुछ कठोर करके शोभाराम की ओर मुड़ कर कहा—बप्पा तो जिस बहू-बेटी को देखते हैं उसीको लक्ष्मी कहने लगते हैं, परन्तु इस विवाह के लिए पीछे तुम्हें पछतावा तो न होगा?

शोभाराम से सिर हिला कर कहा—नहीं।

"और किशोरी को जो बुराई—"

"उसकी बात न छेड़ो जीजी। वह सब झूठ है।"

"तो मैं वहाँ जाती हूँ बप्पा। शोभू भैया को लेकर तुम पीछे से आ जाना। तैयारी तो सब है हो, लग्न भी अभी नहीं गई। वहाँ किसी तरह की देर न लगेगी।"

सोना के मुँह से सब समाचार सुन कर कौसल्या कुछ देर के लिए चुपचाप आँखें मूँद कर अवसन्न पड़ी रह गई। उसके कपोलों पर धीरे धीरे आँसू बहते देख सोना ने समझा, यह बेहोशी नहीं है। कुछ क्षण खड़ी खड़ी कौसल्या के इस शान्त निरुपद्रव आनन्द का अनुभव वह अपने भीतर करने लगी।

सोना किशोरी के पास जा रही थी, सहसा उसे बीच से ही लौटा कर कौसल्या ने कहा—बेटी, गरम पानी है?

"गरम पानी! गरम पानी किसलिए काकी?"

"मैं नहाऊँगी। ठण्डे पानी से तो तुम कोई नहाने दोगी नहीं।"

"शाम को तुमने फिर से नहाया ही था, अब और नहाने की क्या आवश्यकता है?"

"है, बेटी, है। नहा चुकी थी तो क्या, जब मुझे जान पड़ता है, मेरा शरीर और मन शुद्ध न था। अब किसी तरह का नुकसान न होगा; इसके लिए तू मुझे रोक मत। नहा कर

मुझे ठाकुरजी के दर्शन करना है। प्रलाप में मैंने जो कुछ कहा था, उसे भी उन्होंने पूरा कर दिया, वे ऐसे हैं और मैं ऐसी अधम कि उन तक में अविश्वास करने लगी थी !"

गद्गद कण्ठ से सोना ने कहा—नहीं काकी, मैं तुम्हें न रोकूँगी। तुम ठीक कहती हो।

❀ ❀ ❀

आन्तरिक अनुशोचना से बड़ी रात तक छटपटाने के अनन्तर, निद्रा देवी ने कदाचित् उस समय दयाराम और पार्वती को कुछ देर के लिए सुख में सुला दिया था, जिस समय विवाह-मण्डप में बैठा हुआ, किसी आडम्बर के बिना शोभाराम किशोरी का पाणिग्रहण विधि-पूर्वक कर रहा था और वहाँ के शान्त वातावरण में वेद-मन्त्र का मधुर-गुञ्जन गूँज रहा था।

शोभाराम के घर के नौकर-चाकर जिस समय गाँव में और उसके आस-पास के पथ-घाटों पर उसे इधर-उधर खोज रहे थे, उस समय दोपहर के लगभग कड़ी धूप में अपने गाँव से छः सात कोस दूर, नदी किनारे अंजुली से पानी पीकर वह अपनी उदर-ज्वाला बुझाने का प्रयत्न कर रहा था। अरुचि के साथ पिये गये जल ने आँखों और रोम-छिद्रों के प्रधान एवं चोर द्वारों से तुरन्त ही वापस लौट कर उसे पहले से भी अधिक बेचैन कर दिया।

नदी की कगार पर वट का एक पुराना पेड़ था। उसकी घनी छाया के नीचे चूने का बना हुआ एक पक्का चबूतरा था और उस पर ग्राम-निवासियों ने कुछ प्रस्तर-खण्ड रख कर किसी अज्ञात देवता को प्रतिष्ठित कर रक्खा था। जड़ वृक्ष ने मानों इस बात को न सह कर अपनी जड़ों से चबूतरे को इधर-उधर से उखाड़ कर अब-तब कर दिया था। पानी पीकर शोभाराम अपने वस्त्र से उसका एक कोना

झाड़ कर उस पर जा लेटा। रात भर की अनिद्रा और इतनी पैदल यात्रा ने उसे बहुत क्लान्त कर दिया था। थोड़ी देर में ही निद्रा ने उस कठोर भूमि पर घर की कोमल शय्या की अपेक्षा भी अधिक अपनाहट के साथ उसे अपनी गोद में अपना लिया।

सन्ध्या समय किसीके हुड़साने और पुकार कर नाम लेने से जाग कर आँखें मलता हुआ वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। लज्जित होकर बोला—रामचन्द मुखिया हैं!

मुखिया ने हृदय का समस्त आनन्द आँखों और मुख पर बहाकर कहा—कहो शोभू भैया, कैसा ठिकाने पर आ पकड़ा! साहबों को तरह अपनी मनचाही दुलहिन के साथ ब्याह करके आये हो। भर-पेट मिठाई खाये बिना न मानूंगा।

मुखिया को बातचीत के ढंग से शोभाराम विरक्त हो उठा। बोला—मुखिया, इस समय मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। तंग न करो।

शोभाराम की विरक्ति का रामचन्द के ऊपर कोई असर न पड़ा। बोला—तंग करने के लिए तो भगवान् ने तुमसे यहाँ मिलाया ही है। भाग कर अब कहीं न जा सकोगे। तुम्हें खोजने के लिए बीसियों आदमी इधर-उधर फिर रहे हैं। परन्तु फरार आसामी को पकड़ने का यश तो मेरे हाथ में ही था। भैया तुम इश्तिहारी हो इश्तिहारी! दयाराम दादा से दो हजार रुपये लिए बिना मैं न मानूँगा।

इस व्यक्ति पर शोभाराम पहले से अप्रसन्न था। इसके गाँव में उसकी कुछ जमींदारी और लेन-देन था। इसके ऊपर भी उसका ऋण था और उसीको लेकर उसके दादा के साथ इसकी मुकद्दमेबाजी चल चुकी थी। परन्तु उसे सबसे अधिक खलता था, मिलने-जुलने पर इस आदमी का मीठो माठी बातें करना। उसका यह व्यवहार उसे उस दीपक के समान अरुचिकर और अशोभन लगता था, जिसकी समस्त शिखा तो घनीभूत धुएँ से बनी हो और ऊपर की नोंक पर प्रकाश के दो चार छींटे पड़े हों।

शोभाराम को चुप देख कर उसने कुछ ठहर कर कहा—घबराओ मत शोभू भैया, मैं तुम्हें पकड़ने के लिए नहीं निकला था। तुम तो मुझे यहाँ अचानक मिल गये। तुम्हारे गाँव में हाट करके मैं घर लौटा जा रहा था। दूर से इस चबूतरे पर किसी भले आदमी के-से कपड़े देख कर मैं चौंक पड़ा। सोचा, होगा कोई; पड़ा रहने दो। अपने को करना क्या है। ऐसे में कभी कभी बड़ी आफत गले आ मढ़ती है। थाने में जाकर रपट करो, इधर-उधर घिसटे-घिसटे फिरो और फिर गवाही देने जा कर अपने आप को फँसा दो। फिर भी जी न माना और यहाँ आया तो देखता हूँ, तुम हो। परन्तु अब तुम रात को कहाँ रहोगे, चलो मेरे साथ। नदी के उस पार ही तो अपना घर है। वहाँ सब तुम्हारी ही माया है। मैं तुम्हारे घर का पुराना सेर

हूँ, तुम्हें कोई कष्ट न होगा।

शोभाराम ने उत्सुक होकर पूछा—तुम हाट में गये थे?

रामचन्द्र ने कहा—वहीं तो सब हाल सुना। होने को तो सब तरह के आदमी हैं भैया, परन्तु जिन जिनसे मेरी बात पड़ी, सब तुम्हारी बड़ाई करते थे। हिम्मत हो तो ऐसी! मैं तुम्हारे घर भी गया था।

शोभाराम की कठोरता अपनाहट को इस थोड़ी-सी उष्णता से हिम की तरह पिघल कर आर्द्र हो गई। वह झट-से बोल उठा—तुम मेरे यहाँ भी गये थे?

मुखिया ने कहा—जाता कैसे नहीं? मैं तो वहीं गाँव में था, यहाँ घर पर ऐसी खबर सुनता, तब भी मुझे वहाँ जाना चाहिए था। तुम्हारे यहाँ गाँव के और सब लोग भी जमा थे, पूरा कमरा ठसाठस भरा था। दादा बहुत बेचैन और दुखी थे। मैं तो कह आया—दादा, शोभू भैया ने कोई बुरा काम नहीं किया। बड़े (शोभाराम के पिता) के घर का प्रताप ही ऐसा है कि उनके यहाँ कोई बुरा काम नहीं हो सकता। तुम्हें अपने जी को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहिए। वे तुम्हारे डर से यहीं कहीं छिप गये होंगे, दो एक दिन में अपने आप आ जायँगे। शोभू भैया, मुखिया ऐसा नहीं है कि बात कहने में किसीसे दब जाय; जंट हो, चाहे कलट्टर। मैं तो खरी-खरी चुका देने वाला हूँ।

शोभाराम की आँखों में आँसू उमड़ आये। दीन पड़

कर प्रार्थना के स्वर में बोला—देखो मुखिया, तुम तो सब जानते हो। मैं ऐसा न करता तो उस लड़की की हत्या का पाप हम लोगों को न लगता? परन्तु दादा का ही डर है।

रामचन्द्र ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—तुम किसी बात की चिन्ता न करो। मेरे साथ चलो, किसीको मालूम न हो सकेगा कि तुम कहाँ हो। जब तक तुम्हारी इच्छा हो, मेरे यहाँ रहना; घर तुम्हारा ही है। दो-चार दिन में जब सब ठीक हो जाय, तब तुम जो चाहोगे वही हो जायगा। जान पड़ता है, आज दिन भर से तुमने कुछ नहीं खाया। उठो, घर चल कर भोजन कर लो। तुम बड़े आदमी हो; इतना चल-फिर कर, बिना कुछ खाये-पिये तुमने पूरा दिन बिता दिया, यह हम जैसे गँवार किसानों से भी नहीं हो सकता।

शोभाराम इस समय तक इतना निःशक्त हो गया था कि उसका मस्तिष्क भी ठीक ठीक काम नहीं कर रहा था। उसने कहीं सुन रक्खा था कि यदि रामचन्द्र एक और एक मिलकर दो होने की बात कहे तो इस पर भी सोच-समझ कर ही विश्वास करना चाहिए। फिर भी चुपके-से उठ कर वह उसके पीछे हो लिया।

घर ले जाकर रामचन्द्र ने शोभाराम का जैसा सत्कार किया, उससे वह लज्जा और संकोच के भार से दब गया। जिस वर-वेश को वह पाणि-ग्रहण के अनन्तर तुरन्त वहीं

छोड़ कर भाग आया था, मुखिया के प्रत्येक व्यवहार से वह फिर फिर प्रकट होने लगा। उसके माथे पर हल्दी की खौर खींच कर बताशों से भरी थाली में पाँच रुपये रख जब वह उसे भेंट करने लगा, तब सिर हिला कर शोभाराम बोल उठा—नहीं मुखिया, यह किसी तरह नहीं हो सकता।

रामचन्द ने हँस कर कहा—नहीं शोभू भैया, ये लेने ही पड़ेंगे। यह तो आपस का व्यवहार है। चाहो तो बतासे छोड़ दो, मीठा मुहँ करने का दिन तो आज हमारा है।

शोभाराम ने किसी तरह मुहँ पर हँसी लाने का प्रयत्न करते हुए कहा—इस समय ये रुपये न होकर बतासे होते तो इनका अच्छे से अच्छा उपयोग हो जाता। परन्तु मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है कि बात भी नहीं करते बनती! मुखिया, तुम हठ न करो।

रामचन्द ने कहा—भोजन अभी तैयार हुआ जाता है। मैं जानता हूँ, तुमने दिन भर से कुछ नहीं खाया पिया। परन्तु तुम रुपये स्वीकार न करोगे तो हमारी-तुम्हारी लड़ाई हो जायगी।

भोजन करते समय शोभाराम की आँखों में आँसू भर आये। प्रकाश की अपेक्षा धुआँ अधिक उगलने वाली जिस चिमनी से अभी तक उसे कष्ट हो रहा था, उसीने इस समय उसकी लज्जा बचा ली। कदाचित् आज इस समय तक उसकी भौजी के मुहँ में पानी की बूँद भी नहीं पहुँच पाई है

और वह यहाँ अच्छी तरह बैठा भोजन कर रहा है। कैसा अभागा है वह! उसको इच्छा होने लगी कि बहुत दूर किसी एकान्त में भाग जाऊँ। उसकी आँखों में अपने घर का सब दृश्य एक एक करके झूलने लगा। आज वहाँ न तो हलवाई भोज की तैयारी कर रहे होंगे और न जगह-जगह लालटेनें ही जल रही होंगी। सब नीरव और निस्पन्द। मानो वह अपनी एक फूँक में ही वहाँ का सारा का सारा प्रकाश बुझा आया है। दादा तो अपने सोने के घर में दिया जलाते ही नहीं हैं, कदाचित् आज भौजी भी अँधेरे घर में चुपचाप पड़ी है। पड़ी हुई हैं या बेचैनी में छटपटा रही हैं, यह समाचार भी उसे यहाँ किसी तरह नहीं मिल सकता। विवाह से लौट कर वह भोजन करते समय भौजी से कितनी क्या असम्भव चीजों की फरमाइश करेगा, इसकी कल्पना वह अपने जी में बहुत पहले कर बैठा था। और आज वह उन्हींके मौन और सहास आशीर्वाद तक से' वञ्चित है! व्याकुल होकर वह एकाएक थाली पर से हाथ धोने के लिए उठ खड़ा हुआ।

रामचन्द ने रोकते हुए कहा—हैं हैं, करते क्या हो। अभी तुमने खाया ही कितना है?

शोभाराम ने रूखेपन से उत्तर दिया—नहीं; अब न खाऊँगा।

रामचन्द बोला—दिन भर कुछ न खाने-पीने से भूख

मर गई होगी। अच्छी बात है, आओ हाथ धो लो।

भूख न लगने की इस व्याख्या से छुट्टी-सी पा कर शोभाराम ने आराम की साँस ली। रामचन्द खुद शौकीन आदमी था; अपने निज के निवाड़ के पलंग पर मसहरी लगा कर उसने साफ कपड़े बिछा रक्खे थे। शोभाराम उस पर जा लेटा। मच्छर न थे, परन्तु इस समय आदमियों के दृष्टि-दंशन से बचा देने के कारण उसे मसहरी में बड़ा सुख हुआ। रामचन्द ने पलंग के पास खड़े हो कर कहा—सो न जाना, नाई को बुलाया है। हाथ-पैर चाँप देगा तो थकावट दूर हो जायगी।

"नहीं, अब मैं सोना चाहता हूँ। नाई की आवश्यकता नहीं है।"

"अच्छा, पैर मैं चाँपे देता हूँ। संकोच न करो। एक तो मालिक, तिस पर आज दूल्हा; दूल्हा ढाई दिन के लिए बादशाह बन जाता है। तुम्हारे पैर चापने से मेरी जाति न घट जायगी।"

शोभाराम ने किसी तरह अपना पीछा छुड़ा कर करवट बदल ली। थोड़ी देर में ही घर के लोगों को अपने सो जाने का विश्वास दिला कर उसने वहाँ एकान्त बना लिया।

रामचन्द के सौजन्य-पूर्ण व्यवहार ने शोभाराम का मन उसके प्रति कोमल कर दिया था। दूसरे दिन उसने कहा—मुखिया, अब क्या होगा? मुझे तो कुछ नहीं सूझ रहा है।

रामचन्द गम्भीर होकर बोला—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ कि कैसे क्या होगा।

शोभाराम रामचन्द से जिस आश्वासन की आशा रखता था, उसकी बात में उसका आभास भी न पाकर उसका मन व्याकुल हो उठा। इस समय वह कोई असम्भव आशा की बात भी कह देता तो भी शोभाराम का मन उसे स्वीकार करने में पीछे न पड़ता। शंकित हो कर बोला—मुखिया, तुम समझते होगे कि मैं रात को तुम्हारे लम्बे-चौड़े पलंग पर असुर-निद्रा में पड़ा सोता रहा, परन्तु मेरा समय जिस तरह कटा, वह मैं ही जानता हूँ। दादा क्या कह रहे होंगे, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

रामचन्द कहने लगा—शोभू भैया, कल मैंने तुमसे कहना ठीक नहीं समझा, अब कहता हूँ। दादा के मन को बहुत बड़ी चोट पहुँची है। वे तो तुम्हें खोजने के लिए आदमी भी नहीं भेजना चाहते थे। कहने लगे—शोभू कहीं अपनी घर-गिरस्ती का प्रबन्ध करने गया होगा। जब जी चाहे आ कर घर में से अपना हिस्सा बँटा ले; या मुझीसे कह दे, उसके लिए घर छोड़ कर हम दोनों प्राणी फूस की किसी कुटिया में जा बसेंगे, हमें कुछ नहीं चाहिए। सेर भर आटा हमें कहीं भी मिल जायगा। अब मेरा उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।—परन्तु दूसरे लोगों ने अपने आप कुछ आदमी इधर-उधर छोड़ दिये थे। वे भी जल्द लौट गये

होंगे, नहीं तो लोग पाताल में से भी अपनी चीज खोज निकालते हैं, तुम तो यहाँ धरती पर ही हो।

शोभाराम बोल उठा—दादा ने अपने मुँह से यह बात कही है कि मेरा उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं? यह बात उन्होंने कही कैसे? उनसे मेरा कोई सम्बन्ध न होता तो चोर की तरह भागा भागा क्यों फिरता? वे समझते हैं कि भौजी के विना मैं दो कौर भी मुँह में न डाल सकूँगा। इसी लिए यह इतनी नाराजी है। अच्छी बात, जितनी निष्ठुरता करनी हो वे भी कर लें। कठोर मैं भी कम नहीं हूँ। मेरे लिए रो रो कर अन्धे न हो जायँ तो कहना, किसीने कहा था।

रामचन्द ने आश्वासन देते हुए कहा—शोभू भैया, तुम इतना घबराते क्यों हो? तुम्हारे दादा तो भोलानाथ हैं। उन्हें जब जिसने जो बात सुझा दी, उसी पर अड़ जाते हैं। उनका यह रोष बहुत देर तक न रह सकेगा। अभी नई नई बात थी; इसीलिए इतना भड़क उठे हैं। मैं कल वहाँ फिर जाऊँगा और आ कर तुम्हें सब बातें बताऊँगा। यहाँ घर में ही तो हो, किसी बात की चिन्ता न करो।

दूसरे दिन शोभाराम बड़ी रात तक मुखिया के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। इस बीच में उसने अपने जी को बहुत कड़ा करने का प्रयत्न किया। वह सोचता रहा—मैंने जो किया है, कर्त्तव्य वही था। दादा को यह बुरा लगता है

तो इसमें मेरा दोष नहीं है। कर्त्तव्य को कण्टक-शय्या पर भीष्म-व्रत धारण करके स्वेच्छा से दुःख को वरण कर लेना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। मैं निर्विकार चित्त से ऐसा ही करूँगा। मेरे व्यवहार से दादा का कोई अपमान नहीं हुआ। ऐसा हो भी नहीं सकता। आत्म-सम्मान ऐसा रत्न है, जिसकी ज्योति प्रचण्ड आँधी से भी निर्वापित नहीं हो सकती। उसके ऊपर बाहर की धूल चढ़ कर कुछ देर के लिए उसे मलिन भले ही कर दे, परन्तु इससे उसका मूल्य रत्ती भर भी न्यून नहीं होता। हम अपने इच्छा-स्वातन्त्र्य का आरोप दूसरे के सिर पर उसी सीमा तक कर सकते हैं, जहाँ तक वह उसके लिए भार-रूप न हो कर आभूषण-रूप रहता है। मैं मानता हूँ, हमें अपने गुरुजनों का अनुसरण करना चाहिए। परन्तु नियम के बड़े से बड़े दण्ड में भी अपवाद की लचक होती है। ऐसा न हो तो उसका गौरव किसी भी क्षण खण्डित हो सकता है। अँधेरे पथ पर दी हुई सेनापति की किसी आज्ञा का उल्लंघन करके जो सैनिक अपने नायक को अतल गर्त्त में गिरने से बचा लेता है, सेना का क्रूर विधान भले ही उसे गोली से उड़ा दे, परन्तु इससे स्वयं उसे कोई पाप नहीं लग सकता। मैंने भी कोई पाप नहीं किया, फिर मैं डरूँ किस लिए ?

सोच सोच कर ऐसी कितनी ही बातों से वह अपना जी समझाता रहा, परन्तु एक क्षण के लिए भी उसे शान्ति

न मिली। घर की ओर पीठ दे कर भी उसका मन गर्दन मोड़ मोड़ कर निरन्तर वहीं अपनी दृष्टि जमाये रहा। न जानें उसने कितनी बार फिर फिर सोचा कि दादा जैसे स्नेह-शील हैं, उससे उनका रोष निश्चय ही बहुत देर तक नहीं टिक सकेगा। बादल तो चैत के प्रसन्न-आकाश में भी कभी कभी आ कर दिखाई दे जाते हैं, परन्तु वह स्थान उनके रहने का थोड़े ही है। कल तक उन्हें मेरा संवाद न मिल सका होगा। मैं आया ही इस प्रकार हूँ कि किसीको पता न चल सके।—परन्तु अपनी इस सफलता पर शोभाराम का जी बहुत सन्तुष्ट न होता। वह फिर सोचता—इस तरह छिप कर भागने की मुझे आवश्यकता ही क्या थी? थोड़ी-सी सावधानी ही यथेष्ट होती, जिसमें चार छः घंटे का समय टल जाता। फिर कोई देख लेता तो देख लेता। जीवन भर पलायित रहने का न तो मेरा विचार था और न होना ही चाहिए। मुझे अपने जी का कुछ संकोच और दुःख प्रकट करना था, वह थोड़े समय में ही हो सकता था। यदि विवाह के दूसरे दिन ही दोपहर तक मैं लोगों के द्वारा खोजा जा कर दादा के सामने पहुँच जाता तो मुझे ऐसे भले आदमी के पंजे में तो न फँस जाना पड़ता जो तीसरे पहर तक लौट आने के लिए कह कर गया और अब तक नहीं लौटा। ऐसे उत्तरदायित्व-हीन लोगों के कारण ही सारी की सारी जाति को दूसरों के निकट सिर झुकाना पड़ता है। परन्तु कदाचित्

वह दादा को साथ ले कर आ रहा होगा। यदि वे सचमुच आ गये तो मैं करूँगा क्या?—सोचते सोचते सहसा शोभाराम का हृदय आनन्द, आशंका और मधुर भय के संमिश्रण से दुगुने परिणाम में स्पन्दित होने लगता।

परन्तु रामचन्द्र न तो उस दिन लौटा और न उसके दूसरे एवं तीसरे दिन। चौथे दिन आकर बड़े क्लान्त भाव से बिछी हुई एक खाट पर लेट कर हाँफने-सा लगा। इस बीच में शोभाराम का समय जिस व्याकुल प्रतीक्षा में बीता, उसकी अपेक्षा मर जाना वह अधिक पसन्द करता। कुछ ठहर कर उसने कहा—मुखिया, बहुत दिन लगा दिये?

रामचन्द्र ने संक्षेप में उत्तर दिया—ठहरो, अभी सब सुनाता हूँ। बहुत अधिक थक गया हूँ।

शोभाराम आशंका के भार से दब कर चुपचाप बैठा रहा। उसे रामचन्द्र का यह आचरण उस कहानी कहने वाले जैसा अरुचिकर जान पड़ने लगा जो श्रोता को कहानी के मर्मस्थल पर पहुँचा कर सुस्ताने के बहाने रुक कर इधर उधर की बातें करने लगता है। बड़ी कठिनता से उसने अपने को दबाया। कुछ देर बाद असहिष्णु हो कर उसने कहा—इतने दिन तक तुम वहाँ क्या करते रहे? मैं तो यहाँ अकेला रहते रहते तंग आ गया।

रामचन्द्र ने कहा—मैं वहाँ जा ही कब सका। नहीं तो इतने दिन तुम्हें यहाँ कष्ट न उठाना पड़ता। खाने-पीने में

कोई असुविधा तो नहीं हुई ? घर में किसीको शऊर नहीं है। सब पूरे भूत हैं।

शोभाराम की आकृति कठोर पड़ गई। बोला—मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। जब तुम मेरे यहाँ जा भी नहीं सके तो यहाँ मुझे इतने दिन अटकाये किसलिए रहे ?

रामचन्द ने उठ कर खाट पर बैठते हुए कहा—भैया, घबराओ मत, पता मैं सब बातों का लगा आया हूँ। मैं क्या करूँ, तहसीलदार साहब बीच में ही मिल गये। उनके यहाँ कोई मेहमान आये हुए थे, उन्हें शिकार खिलाने के लिए ही इधर-उधर मारा मारा फिरा। जब वे कृष्ण-मुख कर गये, तब छुट्टी मिली। मुखिया हूँ न। इसका इनाम रोज रोज मिलता रहता है। एक चपरासी भी गाँव में आता है तो पाँच जूते आते हुए दे जाता है और पाँच जूते जाते हुए।

शोभाराम उसके इस विनोद में भाग न ले सका। अधीर हो कर बोला—जब तुम वहाँ मेरे गाँव में गये ही नहीं, तब सब बातों का पता क्या लगा आये ?

रामचन्द ने गम्भीर होकर कहा—तहसील में आज तुम्हारा मुख्तार गुरुदीन मिल गया था, नहीं तो आज मैं घर न आकर तुम्हारे यहाँ जाता। मैं इतना नासमझ नहीं हूँ। गुरुदीन से मालूम हुआ कि बात बहुत बेढब हो गई है। पिरथीपुर वाले तुम्हारे दादा पर नालिश करने वाले हैं कि उनका बड़ा भारी अपमान किया गया है, और अब उनकी

लड़की का दूसरी जगह सम्बन्ध होने में बड़ी भारी अड़चन पड़ गई है। इस मामले में दादा को दो साल तक की सजा हो सकती है। दादा तो तुम पर इतने नाखुश हैं कि तुम्हारी बात भी नहीं करना चाहते।

शोभाराम बड़ी देर तक जड़ मूर्तिवत् बैठा रहा। बड़ी देर में वह बात कह सका—मुखिया, ऐसा भी हो सकता है, यह मैंने सोचा न था। अब मैं क्या करूँ, मेरी समझ में नहीं आता।

रामचन्द कुछ क्षण तक चुप रह कर बोला—मेरी बुद्धि भी काम नहीं देती थी, तब मैंने तहसीलदार साहब से कहा। वे बड़ी कृपा करते हैं। सब हाल सुन कर उन्होंने एक राह सुझाई है। परन्तु—

"परन्तु क्या, तुम कहो तो।"

"उन्होंने कहा, शोभाराम अपने दादा पर एक दावा दायर कर दे कि उसने अपनी मरजी से अपना विवाह कर लिया है, इससे उसके दादा बहुत नाखुश हो गये हैं। उसे डर है कि कहीं वे उसे पिटवा न दें। इसलिए सरकार उसकी रक्षा का प्रबन्ध करके, जमीन-जायदाद में उसका हिस्सा उसके भाई से अलहदा करा दे। ऐसा होने से पिरथीपुर वालों का वार दयाराम के ऊपर कमजोर पड़ जायगा। परन्तु हाँ, इसमें सब जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर आ पड़ेगी, इस बात का खुटका है।

शोभाराम बल पाकर उत्तेजित कण्ठ से बोल उठा—मुखिया, मुझे अपने लिए कोई डर नहीं है, बस दादा के ऊपर किसी तरह की आँच न आनी चाहिए। मैंने जो काम किया है, उसमें दादा की इच्छा बिलकुल न थी, यह बात मैं गंगा-जल हाथ में लेकर कह सकता हूँ। दादा के ऊपर किसी तरह का संकट आ गया तो मैं क्या करूँगा ?

रामचन्द्र ने हँस कर कहा—शोभू भैया, तुम बहुत भोले हो। कहीं अदालत में भी दादा के ऊपर अपना यही प्रेम प्रकट करने न बैठ जाना। नहीं तो भेद खुल जायगा कि सब मिली भगत है। और सब काररवाई आज ही कल में हो जानी चाहिए। किसीको कानों-कान खबर न हो। पिरथी-पुर वालों को इसकी सुगसुग लग गई तो अपना दावा वे पहले कर बैठेंगे, और उनका पक्ष सबल हो जायगा।

इस समय तक शोभाराम की उत्तेजना शान्त हो गई थी और वह निस्तब्ध होकर जहाँ का तहाँ बैठ रहा।

शोभाराम को भागे हुए कई दिन हो गये हैं। निरानन्द होकर घर में एक तरह की नीरसता आ गई है। हलवाइयों ने खाद्य-सामग्री तैयार करने के लिए धरती खोद कर जो बड़ी बड़ी भट्टियाँ बनाई थीं वे अपने काले मुहँ में कोयले और राख भरे जैसी की तैसी पड़ी हैं। अभी तक उन्हें पूर कर किसीने ठीक नहीं किया। ऐसा जान पड़ता है, मानों यह घर इन्हीं जैसे किसी गहरे गड्ढे में डूब गया है! कोयले, कंडे, लकड़ियाँ और अपरिष्कृत बड़े बड़े बर्त्तन किसी बहुत बड़े आयोजन के अवशेष का साक्ष्य देते हुए इधर-उधर फैले पड़े हैं।

किन्तु घर के भीतर की दशा ऐसी नहीं है। वहाँ सब पहले जैसा ही है। अपरिष्कार और विशृङ्खला का वहाँ नाम भी नहीं। राख और शीतलता मानों ऊपर ही ऊपर है, आग की उज्वल तीक्ष्णता में भीतर कोई कमी नहीं हुई। पार्वती को देख कर यह अनुमान करना कठिन है कि घर में कोई बहुत

बड़ी घटना हो चुकी है। वह तुलसीघरे के नीचे चटाई पर बैठी रामचरितमानस के सुन्दर काण्ड का पाठ कर रही थी। इसी समय विवाह के निमन्त्रण में आई एक कुटुम्बिनी, नन्हीं ने आकर कहा—लो, तुम फिर पाठ पर बैठ गई भौजी। दादा तो खा-पी गये हैं, तुम भी उठो। जान बूझ कर रोज देर कर देती हो, यह तुम्हारी कैसी बात है?

पार्वती ने उसकी बात का उत्तर न देकर कहा—मुझे अभी देर है नन्हीं, तुम मेरे लिए व्यर्थ न रुको।

नन्हीं ने पास बैठते हुए कहा—हमारे खा लेने से ही क्या होगा? हमारे बाद वंसा की तलाश होगी। वह सबेरे-सबेरे भर पेट लड्डू खा कर गया है। तीसरे पहर जब उसे भूख लगेगी, तब कहीं कक्की की याद करेगा। तुम भूखी बैठी रहो और हम खा लें, यह अच्छा नहीं लगता। कल तुम्हारा व्रत था और आज तुम फिर वैसा ही करोगी, यह मैं न होने दूँगी। तुम्हें उठ कर अभी जीमना पड़ेगा।

पार्वती ने हँस कर कहा—देर में जीमने का मेरा अभ्यास है, मेरे लिए तुम व्यर्थ ही देर करती हो।

नन्हीं बोली—मुझे सब मालूम है भौजी, पहले तुम किस समय खाती थीं और अब किस समय खाती हो। लल्ला, क्या इस समय तक भूखे बैठे रहते होंगे जो तुम ऐसा करती हो? मुखिया तो अब तक उन्हें तीन तीन वार खिला चुके होंगे।

पार्वती ने पूछा—तुमसे किसने कहा कि मैं लल्ला के लिए इतनी देर करके खाती हूँ ?

"क्या सब बातें किसीके कहने से ही जानी जाती हैं ? बहुत-सी बातें तो घास खाने वाला जानवर भी जान जाता है।"

पार्वती ने हँसने की चेष्टा करके कहा—अच्छा यही सही। मुझे पाठ कर लेने दो।

नन्हीं खिन्न हो कर कहने लगी—तुम हँसती हो, यही तो बुरा है। लल्ला के चले जाने पर तुम रो-पीट लेतीं, दो एक उपास कर जातीं, तो तुम्हारा जी हलका हो जाता। तुम सब काम-काज पहले जैसा ही करती जाती हो, वैसे ही हँसती-बोलती हो, इससे देह एक दम टूट जा सकती है। खुली चोट का उपाय कर लिया जा सकता है, परन्तु मुँदी चोट का तो पता ही नहीं लगता कि कहाँ क्या बिगड़ा हुआ है। उसकी आँस जनम भर खटकती है।

पार्वती ने वेदना-भरे स्वर में कहा—नन्हीं, तुम समझती होगी कि मेरे मन को कोई पीड़ा नहीं हुई, वह पाषाण का बना हुआ है। परन्तु इस अवसर पर मैं अपने जी की वेदना कैसे प्रकट करती ? भगवान् ही जानता है, अपने चित्त की व्यथा दबा देने में मुझे कितना क्या सहना पड़ा है। फिर भी मेरे सामने दूसरा उपाय न था। जिस अवसर की बाट मैं न जानें कब से देख रही थी, उसी विवाह

को दुबके-दुबके करने में लल्ला के जी को कितनी ठेस पहुँची होगी, यह मुझसे छिपा नहीं है। आज सब कोई नाराज हो कर उनकी बुराई कर रहे हैं, उन्हें कितनी ही खरी-खोटी बातें सुना रहे हैं, और यही दिन गृहस्थी में प्रवेश करने का उनका पहला दिन है। आज मेरी मंगल-कामना उनके कान तक नहीं पहुँच रही है, इससे बढ़ कर दुःख की बात मेरे लिए दूसरी हो नहीं सकती। लल्ला मुझे अपनी माँ से बढ़ कर श्रद्धा करते हैं, फिर भी आज मैं निरुपाय हूँ। उन तक पहुँच कर दो मीठी बातें भी नहीं कर सकती। आज जब उनके ऊपर क्रोध और कटूक्तियों की बरसा हो रही है, तब मैं अपने जी का समस्त दुःख ठेल कर हँसते-हँसते आशीर्वाद करना चाहती हूँ कि उन दोनों का मंगल हो! परन्तु नहीं, तुम क्यों यह प्रसङ्ग ले बैठती हो?

पार्वती की आँखों से आँसू ढुलक कर उसके कपोलों पर बहने लगे। नन्हीं मुग्ध होकर उसकी बातें सुन रही थी, अब आगे बढ़ कर उसने पार्वती के दोनों पैर पकड़ लिये। गद्गद कण्ठ से कहने लगी—भौजी, तुम धन्य हो! ऐसा हो नहीं सकता कि तुम्हारी बात पूरी न हो। वे दोनों जने तुमसे चाहे जितने दूर हों, तुम्हारा आशीर्वाद उनकी सब संकटों से रक्षा करेगा।

पार्वती को अनुभव हुआ कि इस आत्मीया के मुँह से उसके अन्तर्यामी देवता ने ही मानों एवमस्तु कह दिया है।

उसकी आँखों का जल अपना बाँध तोड़ कर उसका अंचल फिर भिगोने लगा।

इसके कई दिन बाद पार्वती वंसा को भोजन करा रही थी। खाते खाते उसने कहा—अब तो कक्की, शोभू भैया को बुला लो, उनके बिना सूना-सूना लगता है।

पार्वती चुप बैठी रही, वंसा कहने लगा—दादा बहुत नाखुश हैं और शोभू भैया को अलग कर देना चाहते हैं। परन्तु कक्की, शोभू भैया की जगह पर मैं होता तो दादा मुझे कभी अलग न कर सकते। 'जाओ, यह चीज मैं नहीं लूँगा; वह नहीं, वह' कह कह कर मैं ऐसा हंगामा मचा देता कि दादा का नाकों दम हो जाता। हाँ, तुम कह दो तो मैं एक दिन शोभू भैया से मिल आऊँ। दौड़ता दौड़ता चला जाऊँगा और उनसे बात करके तुरन्त तुम्हारे पास लौट आऊँगा।

पार्वती बोली—यह बात किसीको मालूम हो गई तो तू पिटेगा।

वंसा ने कहा—पिट जाऊँगा तो क्या, शोभू भैया के पास तो हो आऊँगा।

पार्वती बात करने लगी—लल्ला के लिए मार खाने में तुझे बुरा नहीं लगेगा?

वंसा ने उत्साहित होकर कहा—हाँ कक्की, रत्ती भर भी नहीं। और मुझे भी ऐसी तरकीब मालूम है कि दादा बहुत नहीं पीट सकते। उस दिन जब उस दुबे वाले ने मुझे

पिटवाने में कोई कसर न रक्खी, तब मैं पिटने के पहले ही इतने जोर से चिल्लाने लगा था कि देखने वाले सब के सब घबरा गये थे। सबने समझा कि अब मेरे ऊपर और मार पड़ी कि मैं मरा। कोई किसीको मार डाले तो उसे बहुत बड़ी सजा होती है न, इसीसे सब डर गये थे। मेरा छट-पटाना और चिल्लाना देख कर तुम भी डर गई थीं। कैसा धोखा दिया था तुम्हें! अच्छा बताओ कक्की, तुम डर नहीं गई थीं?

पार्वती हँस पड़ी। बोली—डर ही गई थी, और क्या।

वंसा पूरे उत्साह के साथ कहने लगा—तो कक्की, तुम मुझे उनके पास हो आने दो। सब लोग कह रहे हैं कि शोभू भैया ने बहुत अच्छा काम किया है।

सहसा उसने देखा कि दादा सामने से आ रहे हैं। उन्होंने मेरी बात सुन ली होगी यह सोच कर उसका मुहँ सूख गया। "दादा आ रहे हैं!" कह कर वह अपना दोंना-पत्तल समेट कर झट पिछले दरवाजे से दूसरे आँगन में खिसक गया।

पार्वती अपने सिर का वस्त्र सँभाल कर व्यस्त हो उठी। दयाराम ने आकर कहा—सचमुच शोभू ने बहुत अच्छा काम किया है! तुम्हें बड़ी अच्छी खबर सुनाने आया हूँ, सुन कर तुम्हारी छाती सिरा जायगी!

दयाराम के कहने के ढंग से पार्वती घबरा गई।

सहसा उसके मुहँ से कोई बात नहीं निकली। दयाराम ने फिर उसी तरह कहा—घबराती क्यों हो ? तुम जो चाहती थीं वही हो गया। मैं शोभू को बुलाने नहीं जा रहा था, उसने मुझे पकड़ बुलाने का प्रबन्ध कर लिया है।

पार्वती ने व्याकुल हो कर कहा—तुम यह कैसी बात कर रहे हो ? तुम्हें मेरी सौगन्ध, साफ साफ कहो। क्या हो गया है ? मुझे बहुत डर लग रहा है।

दयाराम ने व्यंग-पूर्वक उत्तर दिया—नहीं, तुम्हारे डरने की आवश्यकता नहीं है, मैं छः महीने से अधिक के लिए जेलखाने न जाऊँगा। शोभू ने अपनी मरजी का विवाह अपने आप कर लिया है, इस बात से बिगड़ कर उसे पकड़ कर पीटने के लिए मैंने आदमी छोड़ दिये हैं। उसे अपनी जान का खतरा है। इसलिए लाचार हो कर मेरे ऊपर उसे दावा कर देना पड़ा है। घबराओ मत, तुम्हारे ऊपर कोई वार नहीं किया गया, तुम उसकी भौजी हो !

पार्वती हक्की-बक्की हो कर पाषाण जैसी मूर्ति बन गई। दयाराम ने फिर कहा—परन्तु मैं तारीख पर कचहरी न जाऊँगा। वारन्ट से पकड़ कर हथकड़ी डाले हुए चपरासी जब मुझे घर से ही कचहरी तक घसीटते हुए ले जायँ, तब बस्ती वाले भी देख लें कि हाँ, भाई हो तो ऐसा !

पार्वती ने झट से आगे बढ़ कर दयाराम के दोनों पैर पकड़ लिये। कहने लगी—राम राम, ऐसी बात सुन कर

भी तुम लल्ला पर क्रोध करते हो ! इन चरणों की छाया से दूर हो कर दुःख के मारे ही उनकी बुद्धि बिगड़ गई है, नहीं तो ऐसा कभी न होता। मैं जानती हूँ कि उन जैसा भाई पूर्व-जन्म के किसी बहुत बड़े पुण्य से ही मिलता है। तुम लल्ला के गुरु हो, बाप हो; तुमने लड़के की तरह पाल कर उन्हें आदमी बनाया है। उनके ऊपर इससे बड़ा संकट और क्या पड़ सकता है कि वे आज तुम्हारे ऊपर ही चोट कर बैठे। ऐसे में तुम उनका हाथ न छोड़ दो। आज तुम मेरी इतनी बात मानो।

दयाराम ने विक्षिप्त भाव से कहा—मैंने उसका हाथ छोड़ दिया तो क्या हर्ज है। उसने तो मुझे इस तरह पकड़ लिया है कि दूसरा कोई क्या पकड़ेगा।

पार्वती बोली—अच्छा, एक बार तुम मुझीको उनके पास भेज दो, फिर सब ठीक हो जायगा।

"हाँ हाँ, चली जाओ; रोकता कौन है। दावे में कुछ कसर रह गई हो तो तुम ठीक करा देना।"—कह कर पार्वती के हाथों में से अपने पैर छुड़ा कर दयाराम वहाँ से चले गये।

पार्वती को चक्कर आ गया और वह धम से धरती पर गिर पड़ी।

दो तीन दिन में ही पार्वती ऐसी हो गई, मानों महीनों से बीमार हो। उसके हृदय में कुछ चुभ पहले से रहा था, परन्तु वह अपने को चलाये जाती थी। ठीक उस साइकिल के सवार की तरह, जिसकी गाड़ी के पहिये में काँटा छिद जाता है और वह उसे निकाले बिना अपनी यात्रा पहले जैसी ही चलाये जाता है। क्योंकि वह जानता तो है कि इस समय यह काँटा ही गाड़ी की वह हवा रोके हुए है, जिसके बिना यह अचल हो जायगी। उस दिन की घटना ने पार्वती के हृदय का वह काँटा खींच कर उसकी आँखों के आगे रख दिया। इससे वह उस आहत व्यक्ति की तरह अपने को सँभाल न सकी, जो चोट लगने के बहुत देर बाद अपने शरीर से निकला हुआ रुधिर देखकर तत्काल मूर्च्छित हो जाता है।

शोभाराम के उस व्यवहार और पार्वती की बार बार की मूर्च्छा से दयाराम भी बहुत पीड़ित हो उठे थे। परन्तु इस समय उन्होंने जिस आच्छन्न भाव से पार्वती के कमरे में प्रवेश किया उससे वह भी विशेष रूप से व्यस्त हो उठी। निर्बलता में खाट से उतर कर नीचे बैठ जाने के लिए इस समय वे उसे मना नहीं कर सके। खाट पर बैठते हुए उन्होंने कहा—आज मुझे अपनी एक बहुत बड़ी भूल का पता लगा है, वही कहने

के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

पार्वती का हृदय उत्कण्ठा और आशंका के संमिश्रण से धड़कने लगा। वह यह भी निश्चय न कर सकी कि इस समय वह सान्त्वना की बात कहे या क्या। दयाराम ने कहा—तुम्हें यह तो मालूम ही है कि जब तुम प्रयाग से लौटी थीं, तब मैं यहाँ न था। गाँव पर खेती-पाती देखने गया था। वहीं शोभू की पहली सगाई तोड़ने का निश्चय कर चुका था और घर आकर तुम्हारे बहुत विरोध करने पर भी मैंने पिरथीपुर वालों का नया सम्बन्ध निश्चित कर लिया था।

पार्वती चुपचाप सुनती गई, दयाराम ने फिर कहा—उस समय किशोरी की शुद्धता में तुम्हें पूरा विश्वास था, परन्तु साथ ही तुमने यह भी कहा था कि वहाँ जब वह अपनी माँ से संग-छूट हो गई और जब उन्हें लौटकर फिर से मिली तब तुम और वे एक ही स्थान पर न थीं। इसलिए उस समय तुम्हारे विश्वास का मूल्य मेरे निकट कुछ न था। मैंने समझा था कि किशोरी की माँ बाद में तुम्हारे आगे बहुत रोई-गाई होगी, क्योंकि गाँव के दूसरे यात्रियों ने उसका छिपा-छिपा बहिष्कार वहीं से प्रारम्भ कर दिया था; और तुम बहुत सरल स्वभाव की हो, इसलिए तुमने वहाँ लड़की की माँ को कोई आश्वासन दे दिया होगा। यही कारण है, जिससे तुम उसके पक्ष का समर्थन इतनी प्रबलता से कर रही हो।

पार्वती बड़ी कठिनता से 'हाँ' कर सकी। दयाराम ने फिर

कहा—धनवान् के घर विवाह-सम्बन्ध जोड़ने के लिए उत्सुक कौन नहीं रहता? परन्तु मैं इतना लोभी नहीं हूँ कि इसी बात के लिए पहले का किया-कराया सम्बन्ध तोड़ देता। कदाचित् उस समय तुमने भी और सब लोगों की तरह यही समझा था कि मैं लोभ के कारण ही गाँव वाली सगाई तोड़ रहा हूँ और ऐसा करने के लिए भाग्य-वश मुझे बहाना भी मिल गया है।

पार्वती ने लज्जा से अपना सिर झुका लिया। दयाराम ने कहा—मैं यह नहीं कहता कि इसमें तुम्हारा दोष है। उस समय स्थिति ऐसी ही थी कि कोई भी ऐसा ही समझता। किशोरी की शुद्धता में मैं जिस कारण विश्वास नहीं कर सका, वह बात मुझे बहुत पीड़ा पहुँचाती थी। इसीसे मैं एक दिन कहने जाकर भी उसे उस समय तुम्हारे सामने भी नहीं कह सका, परन्तु आज कहता हूँ।

सुनने के लिए उत्सुक हो कर पार्वती ने अपना सिर ऊपर उठाते हुए स्वामी की ओर देखा। दयाराम ने कहा—जब मैं गाँव में था, तब वहाँ भी तीर्थ-स्नान करके प्रयाग से कुछ यात्री लौटे थे। उनमें से एक ने मुझे अपनी आँखों देखी एक घटना सुनाई। एक माँ-बेटी उसके डेरे के पास ही ठहरी थीं। उस लड़की को कुछ बदमाश भुला कर उड़ा ले गये और दूसरे-तीसरे दिन उसकी माँ स्वयंसेवकों की सहायता से बड़ी कठिनाई से उसका उद्धार कर सकी। इस सम्बन्ध में उसने और जो जो बातें बताईं, उन्हें सोच कर जी में बहुत ग्लानि होती थी।

मन-ही-मन उस घटना की कल्पना करके पार्वती सिहर उठी। दयाराम कहते गये—सब बातें सुन कर मुझे पूरा निश्चय हो गया कि वे दोनों माँ-बेटी और कोई नहीं, यही कौसा और किशोरी हैं। इसीलिए मैं तुम्हारा इतना प्रबल अनुरोध नहीं मान सका था। परन्तु आज मुझे मालूम हो गया कि वे माँ-बेटियाँ वास्तव में और कोई थीं।

दूसरी दुर्घटना के वर्णन से यद्यपि पार्वती का मन भारी हो गया था, फिर भी इस समय उसका आनन्द छिप न सका। झट-से बोल उठी—तो अब तुम्हें विश्वास हो गया कि किशोरी वास्तव में निर्दोष है ?

दयाराम ने कहा—हाँ, मुझे विश्वास हो गया है। आज मुझसे एक ऐसे आदमी से भेट हो गई जो इस सम्बन्ध की सब बातें जानता है।

पार्वती ने पूछा—वह कौन है।

दयाराम ने उत्तर में कहा—एक वकील का लड़का। छुट्टी में वह नदी-किनारे सैर-सपाटे के लिए गया था। उसके बाप के यहाँ अपने मुकदमे जाते हैं, इसलिए परिचय है। लौटते हुए पानी पीने के लिए अचानक अपने यहाँ आ गया। कौसा और किशोरी के नाम उसे याद थे। मुझसे उनके घर का पता पूछने लगा। मैंने पूछा—तुम इन्हें कैसे जानते हो ? तब उसने बताया कि वह प्रयाग में ही किसी कालेज में पढ़ता है। माघ के मेले में स्वयंसेवक था। एक दिन स्वयंसेवक शिविर में

एक संग-भूली लड़की पहुँची। वह रात को स्त्रियों के शिविर में रही। घबराहट के मारे रात भर नहीं सो सकी। उसीके जिले की होने के कारण वह उसे समझाने गया था और पता लगा कर उसे उसकी माँ के पास पहुँचा आया था।

पार्वती आनन्द विह्वल हो उठी। बोली—तो अब तो तुम्हारा सन्देह दूर हो गया है; क्या अब भी बहू को अपने घर न आ सकेगी?

दयाराम ने कहा—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ कि क्या करूँ। शोभू ने बहकाने में आकर मेरे ऊपर दावा कर दिया है। पिरथोपुर वाले कहते हैं कि लड़का पागल है; अच्छा है जो ऐसे के साथ उनकी लड़की का सम्बन्ध स्वयं ही न हो सका। मुझे भी जान पड़ता है, उसका दिमाग कुछ फिर जरूर गया है। सुना है, एक दिन तुमसे भी कहता था कि मैं तुमसे न्यारा हो जाऊँगा। परन्तु मैंने लड़की के साथ अनजान में जो अविचार कर दिया, उसका प्रायश्चित्त किस तरह करूँ, यही सोच रहा हूँ।

पार्वती आनन्द के आँसू बहा कर बोली—तुम बहू की बिदा करा कर ले आओ, फिर सब ठीक हो जायगा।

दयाराम ने कहा—अच्छी बात है, मैं ऐसा ही करूँगा। किसी तरह तुम अच्छी तो हो।

पार्वती पति के दोनों पैर पकड़ कर उनसे लिपट गई। उसकी आँखों में एक तरह का उत्कट पागलपन दिखाई देने लगा।

दादा के विरुद्ध नालिश करके शोभाराम की अवस्था उस आखेटक जैसी हो उठी जो हिंसक जन्तु के पंजे में फँसे हुए अपने आत्मीय को बचाने के लिए दूर से गोली दाग तो देता है, परन्तु दागने के अनन्तर ही इस चिन्ता से विकल हो पड़ता है कि उसका लक्ष्य कहीं उसका आत्मीय ही तो नहीं हो गया। रामचन्द्र के घर लौट कर वह एकदम सुस्त पड़ गया। एक के अनन्तर एक करके अनेक आशंकाओं ने उसका हृदय आच्छन्न कर दिया। उसके मन का भाव समझ कर रामचन्द्र ने कहा—तुम्हें किसी तरह का खुटका हो तो अभी कुछ नहीं बिगड़ा। तहसीलदार साहब अपने पर बहुत कृपा करते हैं, इसलिए उनसे कह-सुन कर मैं अभी तुम्हारा दावा वापस करवा सकता हूँ और यह भी हो सकता है कि किसीको कानों-कान इस काररवाई की खबर भी न हो। परन्तु मैं मूर्ख गँवार हूँ, अपनी बुराई-भलाई तुम स्वयं सोच लो।

यही तो विपत्ति है ! उसके मन की अवस्था आजकल ऐसी कब है कि वह अपनी बुराई-भलाई स्वयं सोच-समझ सके ? रामचन्द्र ने तहसीलदार के साथ उसका आलाप-परिचय करा दिया था, और उनकी मीठी बातचीत से उसे भी जान पड़ा था कि वह सज्जन के साथ कृपालु भी हैं। उसने सुन रक्खा था कि ये लोग अपने कृपा-पात्रों के लिए कभी कभी अनुचित काररवाइयाँ भी किया करते हैं। ऐसी बातें सुन कर उसे रोष होता था, परन्तु इस समय यही बात उसके जी को थोड़ा-सा सन्तोष देने लगी।

फिर भी उसकी विकलता कम न हुई। उसके सन्देह और आशंका का बीज खोपड़ी के उन बालों की तरह अलक्ष्य में था, जो उस्तरे से साँझ को अच्छी तरह साफ कर दिये जाते हैं और अपना काला मुँह लेकर सबेरे फिर प्रकट हो पड़ते हैं। दिन रात एकान्त में रहते-रहते उसका जी ऊबने लगता, परन्तु बाहर दूसरों के सामने भी उससे हुआ न जाता था। फिर इस गाँव में ऐसे आदमी भी न थे, जिनसे बातचीत करके वह अन्तरङ्गता स्थापित कर सके। एक दिन उसने रामचन्द्र से कहा—इस तरह तुम्हारे यहाँ कितने दिन पड़ा रहूँगा ? कहना वह यह चाहता था कि तुम्हारे खर्च पर इस तरह बहुत समय तक पड़ा रहना क्या ठीक है ? उसके न कहने पर भी रामचन्द्र ने उसका अभिप्राय समझ कर उत्तर दिया—यह घर और इसकी सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है। तुम्हारे

यहाँ का मैंने बहुत खाया-पिया है और बहुत खाऊँगा-पियूँगा। इसलिए तुम किसी बात का संकोच न करो।

बात ठीक थी, इसलिए शोभाराम सुन कर चुप रह गया।

उस दिन भोजन करके वह हाथ धो रहा था। सहसा रामचन्द्र की किसी बात की भनक उसके कान में पड़ी। वह किसीसे कह रहा था—जा, कह दे, वे यहाँ से चले गये।

शोभाराम एक दम चौंक पड़ा। हाथ-मुहँ धो कर उसने पौर में जाकर पूछा—मुखिया, कौन था?

रामचन्द्र सहसा इस प्रश्न के लिए तैयार न था। उसके मुहँ से निकल पड़ा—वह कुछ नहीं···ऐसा ही एक···मैंने उससे कह दिया···

शोभाराम ने बिगड़ कर कहा—तुमने उससे पूछा भी नहीं कि कौन है और क्यों उससे कह दिया कि मैं यहाँ नहीं हूँ?

रामचन्द्र ने सँभल कर कहा—शोभू भैया, तुम तो समझते नहीं। आजकल आस-पास डाकुओं का एक दल घूम रहा है। बिना जान-पहचान के किसी आदमी को ज्यादा देर ठहरा कर क्या मैं उसे अपना घर-बार अच्छी तरह देख जाने देता?

शोभाराम क्रोध से जल कर बोला—डाकू तो हमें तुम भी कम नहीं मालूम होते! हमें बुला कर देख तो लेने देते कि कौन था।

कहता हुआ वह झट घर के बाहर निकल गया। रामचन्द ने पीछे से आवाज दी—सुनो तो, सुनो तो शोभू भैया, कहाँ जाते हो? परन्तु एक क्षण में ही वह वहाँ से ओझल हो गया।

अपने दोनों कन्धों पर घूरे के ढेर लादे हुए, अपनी उठी हुई धूल में कंकड़-काँटे लपेट कर, टेढ़ी-मेढ़ी गति से जो गली गाँव के बाहर गई थी, उस पर कुछ दूर चल कर शोभाराम ने किसी किसान को जाते देखा। पीछे से उसे पुकार कर उसने कहा—सुनो, तुम किसे पूछ रहे थे?

उसने मुड़ कर कहा—मुखिया के यहाँ शोभाराम को देखने गया था।

"शोभाराम मेरा ही नाम है। मुझे किसलिए देखने आये थे?"

"शोभाराम तुम हो? मुखिया तो कहते थे, वे यहाँ से चले गये!"

"नहीं, शोभाराम मैं ही हूँ। तुम्हें मुझसे क्या काम है?"

"तुम्हें बुला लाने के लिए मुझे सोना बाई ने भेजा था, मैं उनका गाड़ीवान हूँ। उनकी ननद को माता निकली थीं, इसलिए उनकी बीमारी में वे मायके से आई थीं। अब पहाड़ी की दुर्गा मैया को पूजने जा रही हैं! गाड़ी मैं गाँव बाहर सड़क पर रोक आया हूँ।"

ठीक, सोना जीजी ससुराल में थीं; तभी !—शोभाराम ने सहसा एक दीर्घ-निश्वास छोड़ी और उसकी चाल धीमी पड़ गई।

गाड़ी के पास पहुँच कर उसने कहा—सोना जीजी !—और कुछ उसके मुहँ से न निकल सका।

सोना ने कहा—शोभू भैया, यह कैसा उत्पात है ? यहाँ आकर तुम अपने दादा के ऊपर चोट कर बैठे ?

हाय, उसे सोना को भी यह बताना पड़ेगा कि उसने दादा के ऊपर नहीं, अपने आपके ऊपर यह चोट की है ! उसे चुप देख कर सोना ने फिर कहा—रामचन्द के बहकाने में आकर तुमने अपने दादा के ऊपर नालिश कर दी, यह बड़े ही दुःख की बात है।

शोभाराम कह उठा—रामचन्द ने मुझे बहका दिया है ! तो पिरथीपुर वालों ने दादा के ऊपर फौजदारी में मान-हानि का दावा दायर नहीं किया ?

"वह सब झूठ है। वे पहले बिगड़े जरूर बहुत थे। परन्तु ऐसी बातों के लिए लड़ने जा कर कोई भला आदमी अपने हाथों अपनी ही मानहानि थोड़े करता है ? कल ही मुझे वह समाचार मालूम हुआ। आज दुर्गा भैया के वहाँ जा रही थी। चक्कर काट कर इस रास्ते से तुम्हारे लिए ही आई हूँ।"

शोभाराम भड़क कर कहने लगा—रामचन्द बड़ा

भारी दुष्ट है। अभी जाकर उसकी हड्डी-पसली न तोड़ दी तो मेरा नाम !

सोना ने उसे शान्त करते हुए कहा—नहीं शोभू भैया, जो हो गया सो हो गया; अब इस तरह दूसरे के घर अकेले जा कर लड़ने-झगड़ने से कुछ लाभ नहीं। इससे अच्छा यही है कि सीधे दादा के पास जा कर उनके पैर पकड़ लो।

शोभाराम के जी में एक साथ ही दृढ़ता आ गई। उसने कहा—अच्छा, ऐसा ही करूँगा। मैंने अपराध तो बहुत बड़ा किया है, परन्तु जिस तरह छुटपन से मेरी प्रकृति दादा के निकट अपराध करने की हो गई है, उसी तरह निरन्तर क्षमा करते करते उनकी प्रकृति भी क्षमा-शील हो गई है। जीजो, मैं इसी समय जाता हूँ।

❀ ❀ ❀

डेढ़ पहर रात जा चुकी थी, परन्तु घर का द्वार खुला हुआ था। शोभाराम ने प्रसन्न भाव से उसके भीतर प्रवेश किया। उसे जान पड़ा, जब से वह गया, उसका घर जाग्रत भाव से मानों इसी तरह उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा था! घर के भीतरी भाग में जाने के लिए उसने पैर उठाया ही था कि बैठक में से उसे सुनाई दिया—कौन है, शोभू?

आहा! यह दादा का कण्ठ-स्वर है! इसमें स्नेह की कितनी सरसता भरी हुई है! शोभाराम ने पास पहुँच कर

झट से उनके पैर पकड़ लिये और सिसक सिसक कर रोने लगा।

दयाराम ने उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए गद्गद कण्ठ से कहा—आ गया भाई, बड़ा अच्छा किया; नहीं तो मुझे तेरे पास जाना पड़ता। परन्तु तू तो बहुत दुबला हो गया।

शोभाराम सिसकते सिसकते बोला—दादा, मुझसे ऐसा भारी अपराध हो गया है कि मैं अपना काला मुहँ तुम्हें दिखा भी नहीं सकता।—कहकर उसने दयाराम की छाती में अपना मुहँ छिपा लिया।

दयाराम ने उसे छाती से चिपकाते हुए कहा—कुछ हर्ज नहीं; तू तो लड़का है, भूल तो मुझसे भी हो गई। मुझसे बच कर तू सीधा अपनी भौजी के पास जा रहा था, परन्तु उनकी गोद तो बहू ने आकर भर दी, मेरी खाली थी सो तू भर दे!

आँसुओं की दोनों धाराएँ एक में मिल कर एक दूसरे संगम-तीर्थ के जल से दयाराम की गोद सजल कर उठीं।

———